वर्ष चौथा] श्री रामतीर्थ ग्रन्थावली [खण्ड दूसरा

श्री

# स्वामी रामतीर्थ

उनके सदुपदेश—भाग २०।

---

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण } —:०:— { जून १९२३
प्रति २००० } { ज्येष्ठ दूसरा १९८०

फुटकर

ना जिल्द ॥=) } डाक व्यय रहित। { सजिल्द ॥।=)

# विषय सूची

विषय



जी के प्रबन्ध से
ऍं लो-ओरियन्टल प्रेस, लखनऊ में छपी – १९२३



# निवेदन

भगवन्

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग के कार्य-कर्ताओं को अत्यन्त खेद है कि उनके निरन्तर परिश्रम करने पर भी ग्रंथावली का बीसवां भाग यथा समय ग्राहकों के पास नहीं पहुँच सका। इसका कारण एक मात्र लीग का अपना प्रेस न होना है। जिस प्रेस में ग्रन्थावली अभी तक छपती रही, वहां टाइप घिसकर उत्तम छपाई के अयोग्य होगया था। नए टाइप के लिए यद्यपि आर्डर बहुत देर से दे रक्खा था, उसके आने में विलम्ब जान कर काम दूसरे प्रेस में दे दिया गया था, जिसने उत्तम छपाई और शीघ्रता का वचन भी दिया था, परन्तु यह देखकर सब कार्य कर्ताओं को दुःख हुआ कि वहां न तो छपाई उत्तम हुई और न शीघ्रता से हुई, जिससे विवश हो वहां से भी काम उठा कर तीसरे प्रेस में देना पड़ा। पर यहां भी प्रेस के कार्य्य कर्ता अपना वचन पालन न कर सके और छपाई में शीघ्रता की अपेक्षा यहां तक देर हुई कि अभी तक वह भाग (जिसमें स्वामी जी की संक्षिप्त जीवनी दी गई है), जिसको हमारा विचार बीसवें अंक में देने का था, छप कर प्रकाशित नहीं हुआ। इस बीच में अपने पुराने प्रेस में नया टाइप भी आगया और दबादब छपाई होने से जो मेटर २१ वें भाग में देने का विचार था वह पूरा छपकर तय्यार भी हो गया। अतएव इसी को बीसवां भाग बना लिया गया और जो बीसवां भाग होता उसको अब २१ वां बनाया जाएगा। इसमें

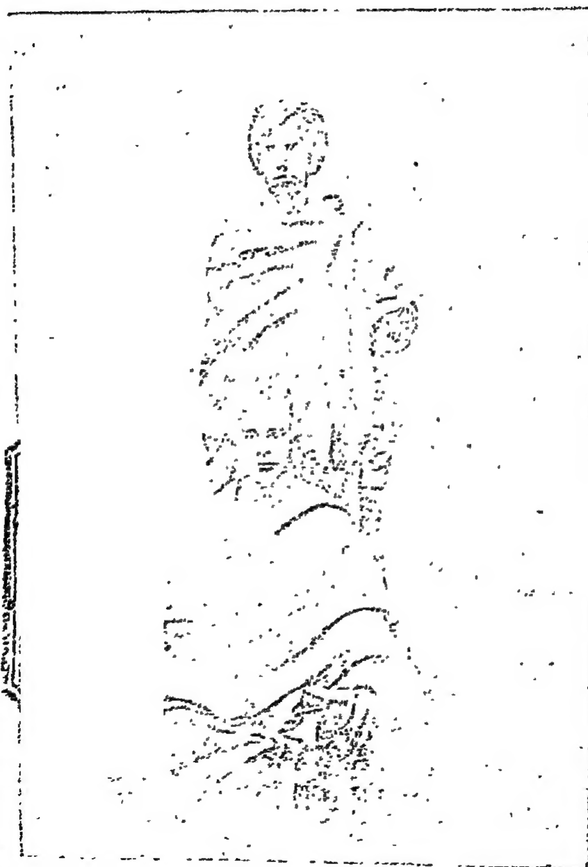
सुहृदय ग्राहकगण देख सकते हैं कि लीग का इस विलम्ब में कितना दोष है, तथापि आप लोगों की चिन्ता का विचार करते हुए लीग के कार्य्य कर्ताओं को बहुत अधिक दुःख हो रहा है। अगला भाग भी प्रायः समाप्त होगया है और एक सप्ताह के भीतर ही ग्राहकों की सेवा में भेज दिया जाएगा। और अब आशा होती है कि भविष्य में भाग शीघ्र छपकर आप की सेवा में पहुँचा करेंगे। यद्यपि यह सब देरी प्रेसों के कारण से हुई है, और लीग का अपना वस नहीं चलता, तथापि कार्य की ज़िम्मेवारी का भार लीग के कार्य-कर्ताओं पर ही है, इस लिये इस विवश देरीके लिये लीग के कार्य कर्ता क्षमा प्रार्थी है, और आशा है कि ग्राहक लोग इस लाचारी देरी को क्षमा करके कार्य कर्ताओं के उत्साह को बढ़ावेंगे और ग्रन्थावली के प्रचार में तन मन धन से सहायता देंगे।

मन्त्री

परमहंस स्वामी रामतीर्थ जी

औ

उनके पट्टशिष्य श्रीमन्नारायण स्वामी जी



लखनऊ १९०८





# स्वामी रामतीर्थ ।



## स्वर्ग का साम्राज्य ।



१९ दिसम्बर १९०२ को हरमेटिक ब्रादरहुड हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।



**स्वर्ग का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। वह तुम्हें कैसे प्राप्त करना है?**

एक बड़ी सुन्दर कहानी है, जिससे प्रगट होता है कि हमारे अन्दर का यह स्वर्ग का साम्राज्य कैसे प्राप्त किया जासकता है। बयान किया गया है कि एक समय एक दैत्य वेदों को लेकर समुद्र की तह में चला गया।

"वेद" शब्द के दो अर्थ हैं। मूल अर्थ है ज्ञान, स्वर्ग का साम्राज्य। दूसरा अर्थ है, हिन्दुओं का अत्यन्त पवित्र धर्मग्रन्थ।

इस राक्षस का, जो वेदों को समुद्र की तह में लेजाने वाला कहा जाता है, नाम शंखासुर था, जिस का अर्थ, शब्द व्युत्पत्ति के अनुसार, शँख का दैत्य अथवा शंख में "रहने वाला कीड़ा" है।

वेदों के उद्धार के लिये, ज्ञान के कोषों को लौटा लाने के लिये, ईश्वर ने मछली का अवतार लिया, दैत्य से युद्ध किया, उसका वध किया, और वेदों को संसार में लौटा लाये।

बच्चे इस कथा को पढ़ते हैं और अक्षरशः ज्यों की त्यों मानते हैं। साधारण लोग इसे पढ़ते हैं और अक्षरशः ग्रहण करते हैं। किन्तु कथा का एक गम्भीर, छिपा हुआ (गुह्य) अर्थ है। कथा एक सामान्य सत्य को समझाने के लिये है।

शँख में रहने वाले कीड़े से वेदों को लौटा लाने के लिये ईश्वर ने मत्स्यावतार लिया। ईश्वर ने मछली का अवतार और समुद्र की तह में दैत्य या कीड़े से युद्ध किया, और उसका वध किया। इसका क्या मतलब था? मछली एक समुद्रीय जन्तु है और शँख में भी समुद्र के एक प्राणी का वास होता है। ईश्वर ने, सर्व स्वरूप ने, मछली के रूप में समुद्र के कीड़े से संग्राम किया। कीड़ा शँख से निकाल बाहर किया गया और समुद्र की लहरों ने शँख को बहा कर किनारे लगा दिया। लोगों ने उसे उठा लिया। शँख बजाया गया और उससे ॐ की गूँजने वाली ध्वनि निकली। यह वेद है। इस माने में वेद, शँख, समुद्र की तह से लाया गया था।

आख्यायिका कहने वाले का अभीष्ट इस पवित्र मंत्र ॐ के महत्त्व पर विशेष ज़ोर देना था। यह प्रकट करना अभिप्राय है कि यह पवित्र अक्षर ॐ सम्पूर्ण, जगत के ज्ञान की

इति श्री है। यह सकल वेद है, अपनी अल्पतं परिधि में घन या संक्षिप्त रूप से शँख में रक्खा हुआ स्वर्ग का साम्राज्य है। यह कहानी का प्रयोजन था।

हिन्दू सब पुण्य और महत्व के अवसरों पर शँख बजाते हैं, अर्थात्, वे मृत्यु, जन्म, समर, या पूजा के समयों पर ॐ उच्चारते हैं। सुखी है वह जो ॐ में रहता, चलता-फिरता और अपनी हस्ती रखता है।

अपने भीतर इन निधियों को पाने के लिये या स्वर्ग के साम्राज्य का ताला खुल जाने के लिये, इस ताली को काम में लाना होगा।

यूरोप अमेरिका के लोग तब तक किसी बात को नहीं स्वीकार करना चाहते जब तक उनकी बुद्धि को वह नहीं जँचती (अपील करती)। संसार के तर्कों से चाहे इस मंत्र का गुण हम न सिद्ध कर सकें; फिर भी, ठीक तरह पर उच्चारण होने पर, यह मंत्र जो प्रबल प्रभाव मनुष्य के चरित्र पर डालता है, या दुनिया की सब निधियों को हमारे अधीन कर देने में भीतर के भेदों के खोलने का जो गुण इस में है, उससे इनकार नहीं किया जा सकता। यह प्रकट करना भी कथा कहने वाले का एक प्रयोजन था कि हिन्दुओं के पवित्र धर्म ग्रन्थों का सम्पूर्ण ज्ञान उस समय प्राप्त किया गया था जब उनके लेखक इस अक्षर को जपते जपते अत्यानन्द में डूब गये थे। यह मंत्र सम्पूर्ण ज्ञान का बीज है। विभिन्न पहलुओं से इस मंत्र की महत्ता आप के सामने रक्खी जायगी। इस मंत्र का महत्व इस लिये दिखलाना ज़रूरी है कि लोग पूरे हृदय से इसे अपनावें।

सब से पहले, ॐ मंत्र किसी विशेष भाषा का नहीं है। ऐसा समझ कर कि यह संस्कृत शब्द है और अन्य किसी

भाषा का नहीं, इसे अस्वीकार न करो। यह परमेश्वर का नाम है। यह अक्षर तुम्हें अन्दर से प्राप्त है, कोई इसकी तुम्हें शिक्षा नहीं देता। यह जन्म के साथ तुम्हें मिलता है। बच्चे की चीख की, ऊँ, ओं, ऑं की ध्वनि से, जो ॐ का एक विकृत रूप है, अनोखी समानता है। ॐ शब्द हरेक बच्चे के पास अन्दर से आता है। ॐ लिखने का ठीक ढँग अ उ म् है। संस्कृत व्याकरण के नियमों के अनुसार, अ और उ, की, संधि होकर साथ मिलने पर, ओ बन जाता है। गूँगा भी अ, उ, और म् की आवाज़ निकाल सकता है। इस तरह, ॐ अपने पूर्ण रूप में, और खंडशः भी हरेक के द्वारा और स्वयं उसके द्वारा दुनिया में लाया जाता है। यह अत्यन्त स्वाभाविक शब्द है जो हर किसी को सूझ सकता है। जब लड़के गलियों में बड़े खुश होते हैं तब उनका छलकता हुआ हर्ष ओ की लम्बी, धूमधामी ध्वनि में स्वभावतः प्रकट होता है, जो केवल संक्षिप्त ॐ है।

यह ध्वनि सब भाषाओं में होती है। संस्कृत, फार्सी, अंग्रेज़ी, जापानी, सब में न्यूनाधिक पूर्ण रूप में यह है। जब लोग अपने आपे से बाहर होजाते हैं, उन अवसरों पर इस ओ ध्वनि का व्यवहार किया जाता है। जब वे हुलसते हैं, जब वे आनन्द से भर जाते हैं, तब यह ध्वनि स्वभावतः उनसे निकलती है। जब लोग बीमार पड़ते हैं या मुसीबत में होते हैं, जब उन्हें मर्मभेदी पीड़ा होती है, तब उनके ओठों से कौन सी ध्वनि निकलती है? ओह, ओह या उम्, जो ॐ का केवल अपभ्रष्ट रूप है। हिब्रू, अर्बी, अंग्रेज़ी प्रार्थनाओं का अन्त आमीन से होता है, जिसका ॐ से अत्यन्त अनोखा सादृश्य है। ग्रीक (यूनानी) वर्णमाला में अन्तिम अक्षर ओमेगा है जिससे ॐ की ध्वनि को प्रमुख स्थान

प्राप्त होता है।

यह ध्वनि हरेक व्यक्ति को क्यों मिलती है, बीमारी में हरेक के ओठों से यह ध्वनि क्यों निकलती है, वह यूरोपीय अमेरिकन, हिन्दू, ईरानी, जापानी, या किसी भी फिरके का क्यों न हो? हिन्दू उत्तर देता है। यह ध्वनि सुन्दर वृक्ष के तुल्य है, जो रोगी मनुष्य को, जिसे प्रचण्ड सूर्य झुलसा रहा है, शीतल छाया देता है। इस लिये स्वभावतः यह रोगी मनुष्य फैले हुए वृक्ष की शीतल छाया ढूँढ़ता है। यही बात है कि हरेक व्यक्ति, क्लेश व्यथा या बीमारी की हालत में स्वभावतः इस अक्षर ॐ, इस स्वाभाविक धर्म का आश्रय लेता है, यह (ध्वनि) उसे कुछ चैन देती है। हम देखते हैं कि सब दशाओं में यह स्वभावतः आराम पहुँचाती है। रोगियों को यह ध्वनि उच्चारण करने से आराम मिलता है। यदि दुःखी और माँदे को भी यह ध्वनि आराम पहुँचा सकती है, तो क्या यह शान्ति और एकता की देने वाली न होगी, यदि आप इसे ठीक तरह से उच्चारें? हम इसे प्रणव कहते हैं और इसे उस वस्तु का वाचक समझते हैं जो जीवन में व्याप्त है,अथवा जो प्राण या श्वासमें संचार करती है। प्रत्येक प्राणि इस ध्वनि को निकालता है, यह उसके श्वास के साथ मिलकर निकलती है। यदि तुम इतनी ज़ोर से साँस (नासिका के द्वारा श्वास) लो कि उसकी आवाज़ सुनाई पड़े, तो तुम देखोगे कि उस आवाज का यदि कोई परिस्फुट शब्द स्थान ले सकता है तो वह है सोहम्, सोहम्। यह ध्वनि सबकी साँस में है। इस में हम सोहम् पाते हैं।

संस्कृत व्याकरण दुनिया की किसी भी दूसरी व्याकरण से अधिक उन्नत है। उसने सब ध्वनियों और शब्दों का पूर्ण विश्लेषण किया है। म् अक्षर व्यंजन है। किन्तु यह

व्यंजन अनुनासिक है और सिद्ध किया गया है कि म् एक ऐसा व्यंजन है जिसकी सीमा स्वर से सटी हुई है। ओ और अ सब व्याकरणों के अनुसार स्वर हैं। स और ह् व्यंजन हैं। व्यंजनों को निकाल दो और हमें ओ, अ, म, या ओं मिलता है।

अब आप देखते हैं कि स्वर स्वतंत्र ध्वनियाँ हैं और व्यंजन परतंत्र ध्वनियां हैं, वे अकेले या अपने सहारे पर नहीं टिक सकते। उदाहरण के लिये, यह व्यंजन क् है। तुम उसे के कहते हो, संस्कृत में वह क् है। मूल ध्वनि में तुम्हें इ या ए सरीखा एक स्वर मिलाना चाहिये और तब वह उच्चारण के योग्य बनता है।

व्यंजन इस दुनिया में नाम और रूप को स्पष्ट करते हैं। इस दुनियाके सब नाम और रूप व्यंजनों की तरह पराश्रित हैं। उनके पीछे यदि परम सत्यता न हो तो क्या उनमें से एक भी अपने आप ठहर सकता है? सब दृश्य नाम और रूप-मय हैं। जिनका उच्चारण आधारभूत सत् या सत्यता, अथवा स्वर के बिना नहीं हो सकता। आप उस सत्य को चाहे परमेश्वर कहें, चाहे न जानने के योग्य तत्व या जो कुछ कहना पसन्द करे कहें। आधारभूत सत्यता, पूर्ण सत, पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द सिद्ध है जिनके सूचक यथा क्रम अ, उ और म् हैं, इस प्रकार सोहम् में स और ह व्यंजन दृश्य व्यापारों के नाम, रूप और आकृति, के स्पष्ट करने का काम देते हैं, और अन्तर्वर्ती ॐ मूलस्थ सत्यता को दर्शाने वा स्पष्ट करने का काम देता है।

यदि हमारे पास अनेक आकृतियों के खाँड के खिलौने हैं, कुछ कुत्ते की शक्ल के, कुछ बैल की शक्ल के, कुछ बाघ रूप के, कुछ मनुष्य की शक्ल के, तो वे एक दूसरे से भेद

तो अवश्य रखते हैं, किन्तु सारा भेद केवल आकृतियों और रूपों तथा नामों में है। एक ही के पदार्थ के बने होने के कारण ये सब के सब वही, शक्कर ( खाँड ) हैं।

समुद्र में जाओ। वहां तुम जहाँ तहाँ तरंगे देखोगे, जहाँ तहाँ झिलकोरे देखोगे, जिनके डील-डौल और शक्ल में भेद होगा, किन्तु उनके अधिष्ठान की असलियत को देखो, वह एक ही समुद्र है। सब एक ही हैं, वे सब पानी हैं, भेद तो केवल आकार और रूप में है।

हीरा ले लो, जो इतना चमकीला, इतना जगमगा, इतना तेजस्वी है, इतना कड़ा है कि लोहे को सरलता से काट सकता है। इसके बाद कोयला ले लो, जो इतना मुलायम होता है कि सहज ही कागज़ पर निशान बना देता है, अति कुरूप, भद्दा मैला, बिलकुल निकम्मा होता है। रसायनज्ञ हमें बतलाते हैं दोनों में असलियत में कोई भेद नहीं है। दोनों वही निखालिस कार्बन हैं, दोनों में कुछ भी भेद नहीं है। फिर बाह्य भेद का कारण क्या है? भेद आकार और प्रकार में है। कार्बन (carbon) के ज़र्रो की हालत और शक्ल एक स दूसरे में भिन्न है। भेद केवल रूप में है।

इसी तरह हिन्दू शास्त्र के अनुसार, इस संसार के सब पृथक विभाग नाम और रूप के कारण से हैं। यदि तुम गहरी तह में जाओ, यदि तुम सब नामों और रूपों के अधिष्ठान स्वरूप तत्व की छानबीन करो, तो तुम देखोगे कि सब का आधार एक ही नित्य निर्विकार, अव्यय तत्व है, वह तत्व अपना आधार आप ही है। उस तत्त्व की तुलना स्वर—ध्वनियों से की जा सकती है, और नाम तथा रूप की तुलना व्यंजन—ध्वनियों से करना ठीक होगा। इस प्रकार सोहम् के स और ह, जो नाम और रूप का काम देते हैं,

जो पराश्रित हैं, छोड़ दिये जाने पर केवल असलियत रह जाती है और एकाक्षर अउम्—ॐ की हमें प्राप्ति होती है। इस प्रकार से ॐ वह असलियत है जो तुम्हारी सांस में संचार करती है। वह विश्व की सम्पूर्ण श्वास में मौजूद है। सम्पूर्ण भेद, सब विभागों, सम्पूर्ण पृथकता के पीछे जो शक्ति है उस का वह अत्यन्त नैसर्गिक नाम है, सार-तत्त्व का अत्यन्त स्वाभाविक नाम है।

अध्यापक मैक्समूलर ने और उनके साथ दूसरे तत्त्वज्ञानियों ने सिद्ध किया है कि सम्पूर्ण विचार और भाषा का वैसा ही नाता है जैसा एक ही सिक्के के मुखभाग का पृष्ठ भाग के साथ। एक दूसरे के विना नहीं टिक सकता। क्या तुम इस पदार्थ को, मेज़ को, विना इसका विचार किये देख सकते हो?। क्या तुम किसी भी वस्तु को तदनुसार विचार किये विना धारण कर सकते हो? "धारण" शब्द ही मानसिक विचार का सूचक है।

फिर, विचार और भाषा एक ही हैं। विना भाषा के तुम सोच ही नहीं सकते। शिशु कोई भाषा नहीं जानता और उसका कोई विचार भी नहीं होता। बच्चे को सोचना शुरू करने दो। जब तक उसके भाषा न होगी तब तक वह नहीं विचार कर सकता। माता बच्चे के कानों में नाम फूंकती है, नामों के अर्थ लड़के के हृदय में फूंके जा रहे हैं। माता के शब्दों के साथ अर्थ का वही सम्बन्ध है जो सवार का घोड़े से। अर्थ रूपी सवार शब्दों के घोड़े पर चढ़कर बच्चे के अन्तःकरण में पहुँचता है।

विना भाषा के हम विचार नहीं कर सकते। विचार और भाषा एक हैं, और यह हम पहलेही देख चुके हैं कि दुनिया और विचार भी एक ही हैं। इस लिये भाषा और विचार

एक प्रकार से अनन्य होने से, और विचार तथा संसार भी अनन्य होने से, शब्द और संसार एक दूसरे के कुटुम्बी हैं। विचार के बिना इस संसार का कोई भी पदार्थ नहीं देखा जाता। किसी पदार्थ को देखने का यत्न करो और अपने चित्त में उसकी धारणा को न प्रवेश करने दो, यह असम्भव होगा। वास्तव में, काले नखते को देखने व मालूम करने का अर्थ है काले नखते का विचार (ख्याल) करना।

इस लोक के सभी पदार्थ तदनुरूप कल्पना के जवाब (प्रतिरूप) हैं। बिना ख्याल के इस दुनिया में कुछ भी नहीं देखा जाता, और बिना भाषा के कोई ख्याल नहीं हो सकता। दुनिया का भाषा से वही रिश्ता है जो एक सिक्के के मुख भाग से पृष्ठभाग का है। इससे तुम्हें इस वचन का "प्रारम्भ में शब्द था, शब्द ईश्वर के साथ था और शब्द ईश्वर था," वास्तविक तत्त्व या असली महत्त्व मालूम होता है। (In the beginning there was word, the word was with God and the word was God.)

अब, हम एक ही शब्द या ध्वनि चाहते हैं जो समग्र संसार को प्रदर्शित करे। हम कोई शब्द चाहते हैं, जो शक्ति, सत्य, बल, नियामक तत्त्व, विश्व को धारण करने वाली वस्तु का प्रदर्शक बन सके।

सब भाषाओं में हमें कुछ ध्वनियाँ मिलती हैं, जो कंठ से निकलती हैं, दूसरी जो ओठों से निकलती हैं, कुछ और तालु के पास से मुख से निकलती हैं। किसी भी भाषा में ऐसी एक भी ध्वनि नहीं है जो वाचिक इन्द्रियों के किसी ऐसे भाग से निकलती हो जो कंठ के नीचे हो। कंठ वाचिक इन्द्रियों की सीमा, बल्कि एक सीमा है, और ओठ दूसरी सीमा हैं। ओठों के बाहर से कोई ध्वनि नहीं निकलती।

यहां हमारे पास अ, उ, म्, है। अ कंठस्थानीय ध्वनि है। वाचिक इन्द्रियों के एक घेरे से यह आती है।

उ ध्वनियों की परिधि के ठीक बीच से, वाचिक स्थानों के मध्यस्थ तालु के निकट से निकलता है।

म् ध्वनि वाचिक इन्द्रियों या भागोंके अन्त या सिरे के ओष्ठ और नासिका से निकलती है। इस तरह 'अ' ध्वनि की परिधि के प्रारम्भ का प्रदर्शक है। 'उ' मध्यका प्रदर्शक है, और म् अन्त का प्रदर्शक है। यह सारे क्षेत्र को छाये है। ॐ, ॐ, अत्यन्त स्वाभाविक नाम है। यह सम्पूर्ण भाषा और फलतः सम्पूर्ण संसार को प्रदर्शित करता है। यहां पर एक सवाल पैदा होता है। और बहुत सी ध्वनियाँ हैं जो अ की तरह कंठ से निकलती हैं। इसी तरह उ और म् की भी सवर्गीय या सजातीय अनेक ध्वनियाँ हैं। तो फिर अपनी इच्छा से चुना हुआ दूसरा कोई कंठ्य ( guttural ) वर्ण उ के वर्ग की किसी दूसरी ध्वनि से और किसी दूसरे सजातीय ओष्ठध्वनि से मिलाया जाकर ऐसा कोई शब्द क्यों नहीं बना सकता जो सकल भाषाओं को प्रदर्शित करे?

इसी तरह उन सब ध्वनियों में जिनका स्थान वही है जो उ का, केवल उ ही ऐसी ध्वनि है जो उन सब का स्वामी, सरदार, सम्राट कही जा सकती है। वह एक स्वर, एक ध्वनि है, जिसे हरेक बच्चा निकालता है। एक गूँगे के पास भी यह होती है। दूसरों ने उसकी शिक्षा नहीं दी थी, वह स्वतः प्राप्त, और फलतः अपनी श्रेणी की सर्वोत्तम प्रदर्शक है। म् सब ओष्ठ्य वर्णों का सर्वोत्तम प्रदर्शक है। इस में एक और विशेषतः है। यह अनुनासिक है और नासिका का, जो श्वास का स्थान है, सारा क्षेत्र ढक लेता है। इस तरह

हम देखते हैं कि यदि कोई पूर्ण नाम हो सकता है तो वह ॐ है। यह सब भाषाओं का प्रतिनिधि वा प्रदर्शक है। यह सम्पूर्ण विचार का प्रतिनिधि है। यह अखिल विश्व का प्रतिनिधि है।

सम्पूर्ण वेदान्त, बल्कि हिन्दुओं का सम्पूर्ण दर्शनशास्त्र केवल इस अक्षर ॐ का विवरण है। ॐ समग्र विश्व को ढके है। सारे संसार में एक भी कोई नियम, एक भी कोई शक्ति, सारे जगत में एक भी कोई पदार्थ ऐसा नहीं है। एक एक करके तुम देखोगे कि भूतों के सब लोक, सब जगत, अस्तित्व की सब अवस्थायें इस अक्षर अउम्, ॐ से ढकी हुई हैं।

ध्वनियाँ दो तरह की हैं, स्पष्ट (लिखने में आ सकने वाली) और अस्पष्ट (लिखी न जा सकने वाली)। हम उन्हें ध्वन्यात्मक और वर्णात्मक कहते हैं। ये संस्कृत के नाम अर्थों से भरे हुए हैं। वर्णात्मक के शाब्दिक अर्थ हैं "वे ध्वनियां जो लिखी जासकती हैं"। ध्वन्यात्मक के अर्थ हैं वे "ध्वनियाँ जो लिखी नहीं जा सकतीं हैं।" सर्व साधारण भाषा वर्णात्मक है। वेदना (भावना) की भाषा ध्वन्यात्मक है। वह शब्दों में लिखी या अक्षरों से प्रगट नहीं की जा सकती।

एक मनुष्य हँसता है। क्या किसी लिखित भाषा में आप उसे प्रगट कर सकते हैं? क्या आप उसे कागज पर अंकित कर सकते हैं? एक मनुष्य रोता है। आप उसे कागज पर नहीं स्फुट कर सकते। ये ध्वन्यात्मक हैं। हम देखते हैं कि ध्वन्यात्मक ध्वनियाँ, या स्वाभाविक ध्वन्यात्मक भाषा एक उद्देश्य विशेष रखती है जो वर्णात्मक से नहीं सिद्ध होता। मान लो कि आप कुछ लोग विदेश जाते हैं, या एक विदेशी आपके देश में आता है, वह आप की भाषा बोल या समझ

नहीं सकता। उसे किसी वस्तु की ज़रूरत पड़ती है, कदाचित् वह कोई वस्तु मोल लेना चाहता है। आप उसकी बात नहीं समझते। शायद वह मनुष्य भूखा है,कुछ खाना चाहता है। उसकी भाषा न समझने के कारण तुम उसकी ज़रूरतों पर ध्यान नहीं देते। मनुष्य चीखना और रोना शुरू करता है। तब तुम उसे समझते हो, तब तुम उसे देखते हो। वेदना की यह भाषा सर्वत्र समझी जाती है। किन्तु वर्णात्मक या बनावटी भाषा केवल वही समझते हैं जो उसे सीखते हैं। स्वाभाविक भाषा सब कहीं समझी जाती है।

तुम हँसना शुरू करते हो, सब समझ लेते हैं कि कोई हास्यजनक या मनोरंजक बात तुम्हारी दृष्टि में पड़ी है अथवा तुम्हारे मन में है। यहां एक मनुष्य है जो कोई बाजा बजाता है, सारंगी कह लीजिये। तुम सुर, ताल जान जाते हो। संगीत की भाषा ध्वन्यात्मक है, और सभी कोई उसे समझता है।

"मर्चेंट आफ वेनिस (वेनिस के व्यापारी)" में लिखा है।

"Therefore the poet.
Did feign that Orpheus drew trees, stones and floods.
Since naught so stockish, hard and full of rage.
But music for the time doth change his nature."

"इस लिये' कवि ने।

बांधनू बांधा कि ओरफियूस ने वृक्षों, पत्थरों और नदों को खींचा क्योंकि ऐसा जड़, कठोर और कोप से पूर्ण कोई भी नहीं है, जिसकी प्रकृति संगीत उस समय के लिये न बदल दे"।

संगीत की भाषा उसी प्रकार की नहीं है जैसी हमारे

ख्याल की भाषा। उसका एक खास उपयोग है, उसमें मोहनी शक्ति है। विज्ञान चाहे सिद्ध कर सके या नहीं कि संगीत आप पर इतना मनोहर प्रभाव क्यों डालता है, किन्तु वह तथ्य तो वर्तमान ही है। यदि विज्ञान इसे नहीं सिद्ध कर सकता तो उसका दोष है। इसी तरह ॐ ॐ में मनमोहनी शक्ति, पूर्णता, एक ऐसा गुण है जो तुरन्त ही उच्चारण करने वाले के मनको क़ाबू में कर लेता है.जो चटपट समस्त भावना और समस्त विचार को एकता की दशा में ले सकता है, आत्मा को शान्ति और विश्राम प्रदान करता है और मनको ऐसी दशा में पहुँचा देता है जिसमें उसकी परमेश्वर से अनन्यता हो जाती है। विज्ञान चाहे इसे समझा न सके, किन्तु यह एक तथ्य है जो प्रयोग ( अनुभव ) से सिद्ध किया जा सकता है। विज्ञान को धिक्कार है यदि वह पवित्र अक्षर ॐ की अमोघता सम्बन्धी सत्य का विरोध करता है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

# पवित्र अक्षर ओं।

२२ दिसम्बर १९०२ को हर्मेटिक ब्रादरहुड हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।

उस दिन पवित्र ॐ मंत्र पर कुछ शब्द कहे गये थे और यह भी समझाया गया था कि सात या आठ पाठों में यह विषय निःशेष नहीं किया जा सकता। इस पवित्र पद पर ग्रन्थ के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे जा चुके हैं और आज भी लिखे जा रहे हैं। वास्तव में सब वेद, सम्पूर्ण वेदान्त हिन्दुओं के सकल पवित्र धर्म ग्रन्थ इस पद ॐ के अन्तर्गत हैं।

भारत में अनेक सम्प्रदायें हैं, किन्तु सब सम्प्रदायें ॐ की हृदय से पूजक हैं। यहूदी, मुसलमान, और इसाई, सब अपनी प्रार्थनाओं का अन्त 'आमीन' ( तथास्तु ) से करते हैं। मुसलमान भी ऐसा करते हैं, यद्यपि वे शब्द का उच्चारण 'आमीन, नहीं 'अहमीन' करते हैं।

तुम्हारी साधारण प्रार्थनाओं में 'आमीन' क्या काम करता है? जिस स्थान पर सम्पूर्ण वक्तृता का अन्त होता है, जहां सारी बात चीत समाप्त होती है, जिस स्थल पर जीवात्मा द्रवीभूत होकर परमात्मा बनती है, वहीं पर इसका प्रादुर्भाव होता है। जब तक उस स्थान तक पहुँच नहीं होती जहां पर सारी हस्ती पिघलकर परमात्मा बनने वाली अर्थात् परमात्मा में लीन होने वाली होती है, तब तक हृदय की भाषा आप उड़ेलते रहते हैं। जहां पर अविनाशी अनिर्वचनीय, अकथनीय की प्राप्ति होती है वहीं पर आमीन ( तथास्तु ) है। तो फिर आमीन क्या है? वह ॐ है, और कुछ नहीं। तुम्हारी सकल

पवित्र प्रार्थनाओं में एमिन या आमीन वही स्थान लेता है जिससे शब्द वेदान्त या 'वाणी के अन्त' का भाव ठीक ठीक चरितार्थ होता है और वेदान्त-सार अर्थात् ॐ के तत्त्व को लगभग पूर्ण रूप से स्पष्ट करता है।

वेदान्त का शब्दार्थ 'ज्ञान का अन्त,' 'वाणी का अन्त' है, अर्थात् वह स्थल जहाँ पर सम्पूर्ण वाणी, सम्पूर्ण विचार रुक जाता है। और हिन्दुओं में ॐ से समग्र वेदान्त प्रतिपादित हो जाता है। वेदों में जिस अर्थ में इस पद का व्यवहार है, वह तुम्हारे ध्यान में अब लाया जायगा ॐ, अ. उ. म्.।

तांत्रिक लोग ॐ की अपनी निराली ही व्याख्या करते हैं। शैवों की अपनी स्वतंत्र व्याख्या है, वैष्णवों की अपनी ही टीका है। और सब हिन्दू सम्प्रदायों के भी अपने विशेष अर्थ हैं। किन्तु जो अर्थ बताया जाने वाला है, वह सार्व भौम है, उसे वेदान्त का आदि स्रोत ही बताना है।

ॐ अ, उ, म् से बनता है। वेदान्त की शिक्षाओं के अनुसार 'अ' ध्वनि मानो भौतिक विश्व को; ठोस प्रतीत होने वाली दुनियां को, और प्रत्यक्ष जगत् को प्रतिपादन करती है कि जो समस्त तुम अपनी जागृत अवस्था में देखते हो।

'उ' स्वप्न लोक के सब अनुभवों को प्रतिपादन करता है। द्रष्टा और दृश्य, स्वप्नावस्था के कर्ता और कर्म दोनों 'उ' ध्वनि से व्यक्त होते हैं। उ सूक्ष्म या मानसिक लोक का, प्रेत-लोक और सब स्वर्गों या नरकों का सूचक है।

सुषुप्ति या मूक निद्रावस्था को, सम्पूर्ण अज्ञात को, और तुम्हारी जागृत अवस्था में भी जो सब अविदित है उसको, जो कुछ बुद्धि से धारण नहीं किया जा सकता उस सबको 'म्' प्रतिपादन करता है। इस तरह ॐ या अ, उ, म् मनुष्य के सम्पूर्ण त्रिविध अनुभव को ढके हुए है। अ, उ, म् में सामान्य

तत्व वह है जिसे अमात्रा कहते हैं, जिससे अविनाशी, निर्विकार वास्तविक तत्व या त्रिविध व्यापार में व्यापक और स्वतः संचारी परम पदार्थ की सूचना मिलती है। इस अमात्रा की दूसरे व्याख्यान में पूर्ण व्याख्या की जायगी। अभी इस विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ॐ सर्व का सूचक वा प्रतिपादक है।

यूरोप और अमेरिका का सम्पूर्ण तत्वज्ञान जागृत अवस्था के अनुभव पर अवलम्बित है और स्वप्नावस्था या सुषुप्ति वा गाढ़ी निद्रावस्था के अनुभव की वह कोई खबर ही नहीं लेता। हिन्दू कहता है "तुम अपूर्ण सामग्री लेकर प्रारम्भ करते हो। तुम्हारा, विश्व की समस्या का, हल क्योंकर सही सही हो सकता है"?

दार्शनिक लोग जागृत अवस्था तक ही अपने को परिमित करते हैं। मिल, हमिल्टन, वर्कले, स्पेंसर भी, सबके सब केवल जागृत अवस्था में प्राप्त किये हुये अनुभव को अपने अविष्कारों और अनुसंधानों का आधार बनाते हैं। अखिल शक्ति के तेज या उसे जिस नाम से चाहें पुकार लें, उसके स्रोत (मूल) को वे वहां (जागृत अवस्था में ही) खोजना चाहते हैं। किन्तु इधर देखिये, यदि आपको कोई गणित शास्त्र का प्रश्न दिया जाय और उसका परिणाम निकालने को कहा जाय, तो पूरी कल्पना, सम्पूर्ण उपक्रम पर आपको विचार करना होगा। निर्दिष्ट सामग्री के केवल एक भाग को लेकर आप किसी प्रश्न को कैसे सही सही हल कर सकते हैं? वेदान्त पूरी निर्दिष्ट सामग्री (data) लेता है। तुम्हारी निर्दिष्ट सामग्री त्रिविध है, तुम्हारे सांसारिक अनुभव त्रिविध हैं, और इस सबका विचार होना चाहिये। जागृत अवस्था का जगत दूसरी दोनों अवस्थाओं में बिलकुल गायब (लुप्त) हो जाता है और

फिर भी तुम, अर्थात् आप स्वप्नवस्था में जीते रहते हो और घूक निद्रावस्था ( सुषुप्ति ) में मृतक हो जाते हो। क्या सच-मुच मृतक हो जाते हो? यद्यपि बुद्धि और व्यक्तिगत चेतना गाढ़ निद्रावस्था में बिलकुल लोप हो जाती है, तथापि असली अपना आप, असली 'तुम' वही बने रहते हो। निर्विकार और निर्विकल्प तत्व, यह वास्तविकता, तीनों लोकों में तुम्हारी असली आत्मा या स्वरूप में संचार करती है। यह ॐ है। अपने आपको केवल चित्त, बुद्धि या मस्तिष्क समझने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है। तुम कैसे जानते हो कि दुनियां है? तुम कैसे जानते हो कि विश्व यहां है? क्या इस कारण से, कि तुम पदार्थों को छूते हो, तुम पदार्थों को चखते और सूँघते हो, केवल यही प्रमाण है? यदि तुम कहो, यह देखो विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) राबर्ट इंगरसोल (Robert Ingersol ), इमर्सन (Emerson), ये सब बड़े बड़े चिंतक दुनिया के सम्बन्ध में इतना कुछ लिख रहे हैं, तो हम प्रश्न करते हैं कि धार्मिक पुस्तकें हैं, यही तुम कैसे जानते हो? इन्द्रियों के ही द्वारा तुम उनका अस्तित्व जानते हो। तुम्हारी इन्द्रियां इस जगत के अस्तित्व का एकमात्र प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

सम्पूर्ण उपलब्धि ( प्रत्यक्षीकरण ) और समझ आदि का मुख्य कारण इन्द्रिय-बोध है। इन्द्रिय-बोध तुम्हारी जागृत अवस्था तक ही परिमित नहीं है। तुम्हारी जागृत अवस्था में तुम्हारी इन्द्रियां स्थूल रूप में हैं। किन्तु क्या अपने स्वप्नों में तुम्हें इन्द्रिय-ज्ञान और उपलब्धि नहीं होती? क्या उस समय के लिये विशिष्ट ज्ञान-इन्द्रिय तुम में नहीं हैं? बाह्य नेत्र और बाह्य श्रोत्र वहां नहीं काम कर रहे हैं। स्वप्न-लोक में तुम साथ ही साथ इन्द्रियों के विषयों को और तदनुरूप ज्ञान-इन्द्रियों या इन्द्रियों को रचते हो। इस तरह पर हम देखते हैं कि

स्वप्नलोक में इन्द्रियां और इन्द्रियों द्वारा अनुभूत पदार्थ अर्थात् इन्द्रिय-गोचर विषय एक ही शक्ति के धन और ऋण स्तंभों अथवा एक ही मुद्रा (सिक्के) के अग्र भाग और पृष्ट भाग के समान हैं। स्वप्नों में कर्त्ता और कर्म साथ ही उदय होते हैं। स्वप्नों के कर्त्ता और कर्म दोनों अ, उ, म् में उ ध्वनि के अन्तरगत हैं और आधार भूत तत्व, जिसमें कर्त्ता और कर्म दोनों तरंगों की तरह प्रगट होते हैं, वास्तविक आत्मा या ॐ है। वेदान्त के अनुसार, ठीक इसी तरह तुम्हारी जागृत अवस्था में, तुम्हारी इन्द्रियां और पदार्थ एक ही शक्ति की धन और ऋण ध्रुवों की भाँति परस्पर सम्बन्धी हैं। स्वप्नों में यद्यपि पदार्थों की उत्पत्ति तुरन्त की जाती है, तो भी वे अपना दीर्घ अतीत काल रखने वाले जान पड़ते हैं। इसी प्रकार जागृत अवस्था में जगत के पदार्थ अपने गत इतिहास के सहित विषयों को ग्रहण करने वाले कर्त्ता के साथ ही प्रगट होते हैं। और जब तुम कहते हो कि यह जगत सत्य है, यह ठोस, कठोर संसार है, तब तुम्हारा कथन ग्रहणकारी इन्द्रियों या कर्त्ता की साक्ष्य (गवाही) पर पूर्णतया निर्भर है, और स्वप्न के पदार्थों को सत्य कहने वाले स्वप्नदर्शी अहं के तुल्य हैं, अथवा अपने चित्र पर के कुत्ते को असली कहने वाले पट पर खचित मनुष्य के समान है, यद्यपि हैं दोनों ही मिथ्या।

इन्द्रियों को अस्तित्व में कौन लाया? महातत्व। इन महातत्वों को तुम कैसे जानते हो? इन्द्रियों के द्वारा। क्या यह एक चक्र में तर्क करना (reasoning in circle—घूम फिर कर उसी स्थान पर पहुँच जाना) नहीं है? इससे जागृत अवस्था में जगत की मिथ्या शीलता सिद्ध हो जाती है। स्वप्नलोक में जब तक तुम स्वप्न देखते हो, पदार्थ सत्य रहते हैं। पर जागृत अवस्था में वही पदार्थ लुप्त हो जाते हैं। जागृत अवस्था में

सब वस्तुएँ ठोस हैं। किन्तु गाढ़ निद्रावस्था में दुनिया कहां है? कहीं नहीं, चली गई, चली गई। इस तरह हम देखते हैं कि जागृत या स्वप्नावस्था के व्यापार को सत्यता का लक्षण लागू नहीं होता।

हिन्दू सत्य उसे कहते हैं जो सब अवस्थाओं में स्थिर रहे। एक समय जिसका अस्तित्व जान पड़ता है और थोड़ी ही देर में छाया की तरह ग़ायब (लुप्त) हो जाता है, यह अवश्य अलीक (मायिक) व्यापार है। हर्बर्ट स्पेंसर (Herbert Spencer) ने भी सत्य का यही लक्षण किया है।

स्वप्नलोक को तुम अलीक (झूठा) क्यों कहते हो? इसी लिये कि तुम्हारी जागृत-अवस्था में वह नहीं होता। तब तो अलीकता (मिथ्यत्व) का यही लक्षण जागृत अवस्था में भी लागू होता है। स्वप्नलोक या गाढ़ निद्रावस्था में जागृत संसार नहीं होता।

अ, उ, म् में अ की ध्वनि जागृत अवस्था के बाह्य कर्त्ता और कर्म को मुझ वास्तविक आधार रूप तत्व का आविर्भाव मात्र सूचित करती है।

मनुष्य के हृदय को कैसे दुराग्रह ने घेर लिया है। वे कहते हैं मेरे पास नगदी है। यह, यह स्थूल, ठोस प्रतीत होने वाली दुनिया सत्य है, । ऐ मूर्ख, एक मात्र कठोर सत्य हो तुम, स्वयं तुम्हारा अपना आप निर्विकार और नित्य है। वही एक मात्र कठोर वस्तु है। बाकी सब इन्द्रियों का छल है। कुछ लोग इस सिद्धान्त को स्वीकार करना नहीं पसन्द करते, क्योंकि इसकी प्राप्ति स्वप्न और गाढ़ निद्रा की अवस्थाओं को जागृत अवस्था की प्रतियोगिनी समझने से ही होती है। उनके विचार के लिये कुछ शब्द कहे जायँगे। पृथिवीरूपी अति भारी बिंदु के आधे से अधिक तल पर सदा रात रहने से पृथिवी

की प्रायः आधी आबादी सदा स्वप्न या गाढ़ निद्रा की दशा में रहती है। हरेक व्यक्ति किसी जगह पर ठीक उतना ही निद्राशील अनुभव में होकर गुज़रता है जितना जागते हुए अनुभव में से। सम्पूर्ण बाल्यकाल क्या एक दीर्घ निद्रा नहीं है? पुनः मृत्यु निद्रा है। अच्छा, पहले तीन या चार वर्ष तुम सदा सोते रहे हो। अब जागृत अवस्था में बीतने-वाले समय घंटों की गिनती करो। तुम देख कर चकित होगे कि तुम्हारी आधी ज़िंदगी सोने में और आधी जागने में बीतती है। जागृत अवस्था में जो हुआ उस पर विचार करने और निद्रावस्था में जो कुछ हुआ उसे विचार में न लाने का तुम्हें क्या अधिकार है? नींद की दशा में क्या तुम मर जाते हो? नहीं। तुम्हारी स्वप्नावस्था के अनुभव भी अनुभव हैं। तो फिर उन पर ध्यान न देने का क्या कारण? यदि जागृत अवस्था अधिक शक्तिशाली हो, तो फिर निद्रा किस तरह बिना अपवाद के परम बलवानों और बुद्धिमानों के भी हाथ पैर मानो बाँध लेती है और हर रात को पलंग या कौच पर लम्बा लम्बा लिटा देती है? निद्रा की निठुर शक्ति उनकी जागते रहने की उत्कट इच्छा की कोई परवाह नहीं करती। निद्रावस्था की उसी तरह अपनी दुनिया निराली है जैसे जागृत दशा की। फिर तो यदि जागृत लोक का तुम्हारे ध्यान पर कोई दावा है तो स्वप्नलोक का भी समुचित विचार होना चाहिये।

अमेरिका वाले और यूरोपीय लोग संख्याधिक्य की दृष्टि से हरेक बात का निर्णय करते हैं। अच्छा तब तो स्वप्नावस्था और गाढ़ निद्रावस्था को भी वोट दिये जाँयगे। यदि जागृत-अनुभव के प्रमाण पर स्वप्नावस्था का अनुभव मिथ्या है तो वैसे ही स्वप्न लोक और गाढ़ निद्रावस्था के

प्रमाण पर जागृत अनुभव असत्य है। पुनः, ये पौधे मानो अविच्छिन्न गाढ़ निद्रावस्था में हैं, और ये पशु निरन्तर स्वप्नशील दशा में हैं। संसार तुम्हें जैसा प्रतीत होता है उससे बिलकुल ही भिन्न उन्हें जान पड़ता है। उनके अनुभव को क्यों नहीं मानते? चींटी के नेत्रों, मेंढ़क के नेत्रों, उल्लू के नेत्रों, हाथी के नेत्रों के लिये वस्तुयें उससे बिलकुल ही भिन्न हैं, जो वे तुम्हारे लिये हैं। अरे, परन्तु तुम कहते हो कि केवल मनुष्य के अनुभव पर विचार किया जाना चाहिये और जागृत अवस्था या जागृत-लोक सत्य कहा जाना चाहिये। किन्तु यदि सब पूर्ण पुरुषों के अनुभव को तुम ठीक ठीक ग्रहण करो तो उससे भी तुम्हें विश्वास हो जायगा कि यह ठोस जान पड़नेवाली दुनिया मिथ्या है। आप पूछेंगे कि यह क्योंकर? यह देखो, हमारे वैज्ञानिक, तत्ववेत्ता, हक्सले-गण और स्पेंसरगण, सब के सब जागृत दुनिया की सत्यता पर बहुत ज़ोर देते हैं। उनका अनुभव दुनिया की असत्यता कैसे प्रगट कर सकता है? ज़रा सोचो। उनके उत्कृष्ट विचारों को तुम मानोगे या निकृष्टों को? सोने या खर्राटे भरने के समय की उनकी उक्तियों पर तुम ध्यान न दोगे?। किस दशा में ये महान लेखक अपनी पूर्ण प्रभा से चमके हैं? जब उनसे ज्ञान मानो बह और उत्पन्न हो रहा है, तभी वे अपनी उत्कृष्ट दशा में होते हैं, और पूर्ण सम्मान तथा विश्वास के योग्य होते हैं। उनकी उस उच्चतम दशा में उनके पास जाओ और देखो कि उनकी देह का प्रत्येक रोमकूप, उनकी त्वचा का हरेक रोम मानो जगत की असत्यता का व्याख्यान दे रहा और अद्वैत की घोषणा कर रहा है कि नहीं? उस अवस्था में वहाँ कोई मेरा-तेरा नहीं है, द्वैत नहीं है, अनेकता नहीं है; न व्यक्तित्व है, न दुनिया। सारा व्यापार पिघल कर

शून्य हो जाता है। वह तत्वज्ञ, योग की दशा में है, समाधिस्थ है, पूर्णावस्था में है, उस अवस्था में है जिस में स्वभावतः सम्पूर्ण ज्ञान की धारा उससे बहती है, उस अवस्था में है जिसमें स्वभावतः सम्पूर्ण ज्ञान उससे प्राप्त होता है, जैसे सूर्य से प्रकाश। उस अवस्था में होने से वह वार्तालाप नहीं करता। जब उस लोक से वह निकलता होता है, तभी बातचीत आती है, आविष्कार और श्रेष्ठ विचार उससे निकलते हैं। इस प्रकार सब महान चिन्तकों की उत्कृष्ट अवस्था का अनुभव दुनिया की असत्यता को प्रमाणित करता है। इसे अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। हम चिन्ता करते समय क्या करते हैं? चिन्ता करते समय एक प्रकरण पर टिक कर तुम आगे बढ़ते हो। और सब विषयों को हटा कर तुम एक प्रकरण को ले लेते हो। तुम अपने पूर्ण चित्त से उसी पर एकाग्र होजाते हो, तुम्हारी सब शक्तियां और पौरुष उसी एक विशेष प्रकरण में लग जाता है। चित्त उस कल्पना से परिपूर्ण होजाता है। फल यह होता है कि वह कल्पना लुप्त होजाती है और शुद्ध अलौकिक चेतना, परम चेतना जो सम्पूर्ण ज्ञान का सोता होती है, हाथ लगती है।

मनोविज्ञान के एक सुप्रतिष्ठित नियम के अनुसार, एक वस्तु का हमें अच्छा बोध होने के लिये उस वस्तु के पास कोई भिन्न वस्तु का होना ज़रूरी है। जब चित्त में कोई द्विधा नहीं होती, तब समस्त पदार्थ-ज्ञान विश्राम लेता है और फिर दैव-ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जब टेनीसन ( Tennyson ) से लार्ड टेनीसन का ध्यान बिलकुल दूर होजाता है, केवल तभी वह कवि टेनीसन होता है। जब बर्कले (Berkeley) स्वामिभावापन्न, स्वत्वाधिकारी धर्माचार्य नहीं है, केवल तभी वह तात्विक बर्कले है। जब

ह्यूम ( Hume ) देहाभिमान से परे है, जिस की घोषणा जीवन चरित-लेखक करता है, केवल तभी वह दार्शनिक ह्यूम है। जब हक्सले (Huxley) ऐतिहासिक का हक्सले नहीं है और, मानो, सर्वमय रूप है, तभी वह वैज्ञानिक हक्सले है।

जब हमारे द्वारा कोई महान और विचित्र कार्य सम्पादित होता है, तब उसका श्रेय लेना मूर्खता है, क्योंकि जब वह काम हो रहा था, तब यश का भी अहंकार बिलकुल गैर-हाज़िर था, अन्यथा कार्य का सौन्दर्य नष्ट हो जाता। "मैं कर रहा हूँ" की चेतना बिलकुल गैरहाज़िर थी। ईश्वर से अपने आप ही ( वह ) बात आई। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये लोग, ये तात्विक और महान लेखक, कोई भी वे हों, अपने आचरणों से, नहीं, नहीं, अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप से यह उपदेश देते और प्रचार करते पाये जाते हैं कि "जगत मिथ्या है", यदि हम इनके उस समय के निर्णय को, सम्मति को ग्रहण करें जब ये अपनी उत्कृष्ट दशा में होते हैं। शब्दों की अपेक्षा कार्य ज़ोर से बोलते ( अधिक प्रभाव डालते ) हैं। समर में हम महान शूरों और नायकों को देखते हैं। अपनी श्रेष्ठतम दशामें होने से वे लड़ते रहते हैं। गोलियां दनादन और सनासन उनके आस-पास भड़राती रहती हैं, यहाँ गोली है, वहाँ घाव है, खून उनकी देहों से वेग से बहता है, उनके शरीर टुकड़े टुकड़े होजाते हैं, फिर भी वे आगे बढ़ते जाते हैं। ऐसी दशा में पीड़ा पीड़ा ही नहीं है। क्यों? क्योंकि व्यवहारतः शरीर शरीर नहीं है और न बाहरी दुनिया दुनिया है। उद्योग की भाषा में वह जगत और शरीर को मिथ्या कर रहा है। इस तरह तुम्हारे नेपोलियन, ( Napolean ), तुम्हारे वाशिंगटन ( Washin-

gton), तुम्हारे वेलिंगटन ( Wellington ), और दूसरे सब अपने कामों के द्वारा तुमसे कहते हैं, तुच्छ बनानेवाली बुद्धि की उपेक्षा पूर्वक वे तुमसे कहते हैं कि जब वास्तविक आत्मा ( तुम्हारा असली अपना आप ) जो अखिल तेज है, अपना सिक्का जमाता है, तब दुनिया कुछ नहीं है। सच्चा अपना आप, जो पूर्ण ज्ञान और परमशक्ति है, एक मात्र कठोर सत्यता ( वा उग्र तत्व ) है, जिस के सामने जगत की बाह्य सत्यता घुल जाती है।

योद्धा की भुजाओं को प्रवल कौन बनाता है? शुद्ध आत्मा की कठोर, दृढ़ और अचल वास्तविकता से एकता अर्थात् अभेदता का यह काम है।

चित्त को इतने अविष्कार और नवीन ईजादें (कल्पनायें) सूझने का कारण क्या है? सच्ची आत्मा की, ईश्वर की कठोर, दृढ़ वास्तविकता में थोड़े समय के लिये बुद्धि या चित्त की केवल लीनता। वही तुम हो, वह सत्यता तुम हो, तुम विश्व के प्रकाश हो, प्रभुओं के प्रभु, पवित्रों के पवित्र, ऊँचों के परमोच्च हो।

ॐ ( अ-उ-म् ) मंत्र में, पहला अक्षर अ, जागृत अवस्था के मायामय भौतिक जगत के आधार भूत और प्रवर्तक रूपी तुम्हारे आत्मा का, इस कठोर सत्यता का, स्थानीय है। उ सूक्ष्म जगत का प्रतिपादक है। और अन्तिम अक्षर म्, अस्तव्यस्त प्रलय अवस्था के आधार भूत और सर्व अज्ञात के रूप में अपने को प्रगट करने वाले परम आत्मा का सूचक है।

ॐ उच्चारते समय, बुद्धिमानों को अपना ध्यान एकाग्र करना पड़ता है, और सूर्योदय या तड़के के समय रंगों को प्रगट करनेवाले तथा दोपहर के पहले फिर उन्हें अपने में

लीन भी करनेवाले सूर्य की भाँति, तीनों लोकों को प्रकट एवं विनष्ट करनेवाली कठोर सत्यता के रूप अपने आत्मा को अनुभव करने में भावनाओं को लगाना पड़ता है।

ये लोक देखने मात्र हैं। अपनी स्वप्नावस्था में तुम एक भेड़िया देखते हो और डरते हो कि भेड़िया तुम्हें खा जायगा, तुम डर जाते हो, किन्तु जिसे तुम देखते हो, वह भेड़िया नहीं है, वह तुम खुद हो। अतः वेदान्त तुम्हें बतलाता है कि जागृत अवस्था में भी "मित्र या शत्रु तुम ही हो", तुम्हीं सूर्य हो और तुम्ही वह सरोवर हो जिसमें सूर्य प्रतिबिंबित होता है। तुम्ही दीपक और पतिंगा हो। तुम्हारा जो घोर से घोर शत्रु है, वह शत्रु तुम हो, दूसरा कोई नहीं। ॐ उच्चारण करते समय उस दर्जे तक तुम्हें अपने चित्त को इस तथ्य का अनुभव कराना होगा कि सम्पूर्ण द्वेष और कुभाव चित्त से समूल उखड़ जाय, बुद्धि से निकाल दिया जाय। पृथकता के इस विचार को साफ कर दो। मित्र या शत्रु का रूप और मूर्ति कोरा स्वप्न है। तुम्ही मित्र हो और तुम्ही शत्रु हो। कल्ह तुमने जो बातें की थीं वे क्या आज तुम्हारे साथ हैं? क्या वे स्वप्न नहीं हैं? वे चली गईं। कल्ह की वस्तुयें कहां हैं, क्या वे चली नहीं गईं? इसी अर्थ में जागृत अवस्था का अनुभव भी स्वप्न है, स्वप्नावस्था का अनुभव स्वप्न है। असली, खरी नगदी, कठोर तत्व, वास्तविक आत्मा उनके पीछे (आधार भूत) है, यह अनुभव करो।

सब पदार्थ को कल्पना मात्र अनुभव करने के बदले कुछ लोग ख्याल को पदार्थ बनाना (साकार करना) चाहते हैं। वे स्थूल लोक को सूक्ष्म लोक या काल्पनिक संसार की अपेक्षा सत्य मानते हैं। वेदान्त के अनुसार, स्थूल और सूक्ष्म लोक दोनो ही मिथ्या हैं, तुम्हें दोनों से ऊपर उठना

चाहिये, क्योंकि विश्राम, सच्ची शान्ति, सुख की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब नाम-रूपों के पीछे की सत्यता, खरी नगदी का अनुभव किया जाय।

अ-उ-म् में अ को कभी कभी मात्रा या रूप की संज्ञा दी जाती है, उ प्रायः मात्रा या रूप कहलाता है, म् मात्रा या रूप कही जाती है। किन्तु ॐ मात्रा या रूप पर नहीं रुक जाता। वह सत्यता, खरी नगदी का दावेदार है, जो इन सब मात्राओं की आधार है। लोग कहते हैं "हम चाहते हैं जीवन, कोरी कल्पनायें हमें न चाहिये"। अरे जीवन क्या वस्तु है? तुम कौनसा जीवन चाहते हो, स्वप्नावस्था का, या गाढ़ निद्रावस्था का, या जागृत अवस्था का? यह सब तो केवल दिखाऊ है। वास्तविकता, सच्चा जीवन तुम्हारा अपना आप वा आत्मा है। ऐसे कठोर नियम हैं जो इन्द्रियों के द्वारा तुम्हें सदा विषयानन्द न भोगने देंगे। अपने आप को इन्द्रियों का दास बनाकर इन्द्रिय-लोक के हाथ बेच कर क्या तुम्हारे लिये सुखी होना संभव है? नहीं, यह असंभव है। अत्यंत निर्दय, उच्छृंखल कानून हैं, जो इन्द्रियों के भोग में तुम्हें सुखी न होने देंगे।

आत्मा असली ज़िन्दगी और चोखी नगदी है। यह अनुभव करो और ये भौतिक सुख तुम्हें खोजना शुरू करेंगे। जैसे पतिंगा जलती हुई ज्वाला के पास आता है, जैसे नदी समुद्र में मिलती है, जैसे छोटा कर्मचारी किसी महान सम्राट का आदर सत्मान करता है, ठीक उसी तरह सुख तुम्हारे पास तब आयेंगे जब तुम अपने सच्चे स्वरूप को, अपने परमेश्वरीय प्रताप को, सच्चे तेजस्वी आत्मा को, पूरी तरह से जान और अनुभव कर चुकोगे। ॐ इस आत्मा को प्रतिपादन करता है।

यह दिखला दिया गया है कि अ-उ-म् से, इन तीन मात्राओं से, हिन्दू, विशेषतः वेद, किस तरह तुम्हें आधारभूत सत्यता का, जो तुम हो, पता बतलाते हैं। ॐ का अर्थ है पर्दों के पीछे की आधारभूत सत्यता, नित्य सत्य, अविनाशी आत्मा, जो तुम हो। इस तरह इस पवित्र मंत्र, ॐ को गाते समय तुम्हें अपनी बुद्धि और देह को अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) में झोंक देना होगा, इन्हें सच्ची आत्मा में गला देना होगा। यह अनुभव करो और भावना की भाषा में इसे गाओ। अपने कृत्यों से इसे गाओ, अपनी देह के प्रत्येक रोमकूप के द्वारा इसे गाओ। अपनी नाड़ियों में इसे प्रवाहित होने दो, अपने सीने में इसे धड़कने दो। अपनी देह के हरेक रोम और अपने रुधिर के प्रत्येक बूंद को इस सत्य से झनझनाने दो कि तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, सूर्यों के सूर्य हो, अखिल विश्व के स्वामी हो, प्रभुओं के प्रभु हो, सच्चे आत्मा हो। सूर्य और तारागण तुम्हारा हस्तकौशल हैं, और स्वर्ग तथा पृथिवी तुम्हारी कारीगरी। हरेक वस्तु तुम्हारी महिमा प्रगट करती है, और सम्पूर्ण प्रकृति तुम्हें पूजती है।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

# मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है

२४ दिसम्बर १९०२ को हर्मेटिक ब्रादरहुड हाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।

मूसा की पुस्तकों में हम पढ़ते हैं कि परमेश्वर ने दुनिया की सृष्टि की। उसने अपनी कारीगरी देखी। और वाह, क्या सुन्दर तथा उत्कृष्ट थी। इंजील के पहले खंड में हम इसके सम्बन्ध में पढ़ते हैं, और वहां भी ऐसी ही बात है। "ऐ प्रभु! तेरी इच्छा पूर्ण हो", इस वचन से चित्त की जो वृत्ति प्रकट होती है उसे वेदान्त, आप जानते हैं, कहीं अधिक ज़ोर से प्रकट करता है। हिन्दू इसे यों कहता है, "मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है। मेरी इच्छा पूर्ण हो रही है"। स्त्री जब अपनी इच्छा अपने पति की इच्छा से अनन्य करती है, तब वह सहर्ष कह सकती है कि "मेरी इच्छा पूरी हो रही है"। और "तेरी इच्छा पूर्ण हो", यह प्रार्थना करने की उसे ज़रूरत नहीं, क्योंकि वे दो नहीं हैं, एक हैं। अपने प्रभु की इच्छा के सामने अपनी इच्छा को झुकाने में उसे बड़ा प्रयत्न करना पड़ा था किन्तु बारंबार के प्रयत्नों से श्रद्धालु स्त्री जब भेद को जान चुकती है, तब वह अपनी करतूतों के समान अपने पति के कृत्यों का सुख भोगती है। इसी तरह एक वेदान्ती दुनिया में हरेक वस्तु को अपनी ही रची हुई के समान भोगता है। व्युत्पन्न लोगों के लिये

stones walls do not a prison make,
Nor iron-bars a cage.
Minds innocent and quiet take
That for a hermitage.

पत्थर की दीवारें कैदखाना नहीं बनातीं,
न लोहे की शलाका पिंजड़ा.
शान्त और निर्दोष चित्त अंगीकार करते हैं
उसे साधु-आश्रमवत्।

दूसरी ओर, मूर्ख लोग, जो अपने असली आत्मा को नहीं जानते, जो स्वार्थी और अहंकारी हैं, अपने महलों और राज-भवनों को भी कारागारों, कब्रों और नरकों से बदतर बना लेते हैं। अपनी तुच्छ चिन्ताओं, नीच, अधम इच्छाओं, और काल्पनिक भय तथा शंकाओं से वे अपनी ज़ंजीरें आप गढ़ लेते हैं।

वेदान्त तुम्हें बताता है कि तुम्हारा सुख तुम्हारा अपना ही कार्य है, सांसारिक कामनायें उसमें हस्तक्षेप करनेवाली कौन हैं? सत्य को अनुभव करो और तुम मुक्त हो। वेदान्तिक अनुभव दुर्लभ है, क्योंकि यूरोप और अमेरिका के लोगों की अति अधिक संख्या समझती है कि उन्हें अपने को ईश्वर में परिवर्तित करना पड़ेगा, उन्हें अपने में परमेश्वर की सृष्टि करना होगी। वेदान्त के अनुसार, स्वतःसिद्ध सत्य यह है कि तुम तो अब भी ईश्वर हो, ईश्वर के सिवाय और कुछ भी नहीं हो। तुम्हें ईश्वर बनना नहीं बाकी है, उसको केवल जानना और अनुभव या मालूम करना है। तुम्हें उसे अमल में लाना है, तुम्हें उसका उपयोग करना है। यह एक मनुष्य है जिसके घर में बहुत बड़ा खज़ाना है, और वह उसे भूल गया है। यह एक दूसरा मनुष्य है जिसके घर में कोई खज़ाना नहीं है। वे दोनों खज़ाने के लिये खोदना शुरू करते हैं। जिस मनुष्य के खज़ाना है किन्तु उसे भूल गया है, वह खोदने से पा जायगा। किन्तु जिस मनुष्य के घर में कोई गड़ी हुई दौलत ही नहीं, वह उसे न पावेगा। निधि वहाँ है। अब

कृपण या कंजूस न रहो, उसे काम में लाओ। तुम्हें निधि वहाँ रखना नहीं है, तुम्हें केवल उसका उपयोग करना है। तुम्हारी आत्मा स्वभाव से अपवित्र और पापी नहीं है, वह एक व्यक्ति के पाप से पतित नहीं हो गई है,और न उद्धार के लिये दूसरे व्यक्ति के पुण्य पर वह निर्भर करती है।

यह काला तख़ता है, जो कठोर, ठोस पदार्थ है। मान लो कि काले तख़ते को तुम पोंछ देते हो और फिर मलते तथा रगड़ते हो। क्या तुम उसे पारदर्शी बना सकते हो? नहीं। एक दर्पण ले लो। उसमें चाहे मट्टी भर गई हो, वह चाहे मैला और गंदा हो, किन्तु तुम्हारे साफ कर देते ही वह पारदर्शी हो जाता है। तुमने अपनी चेष्टाओं से उसे पारदर्शी नहीं बनाया है। तुमने केवल उसे बाहर निकाल लिया है जो वहाँ पहले से मौजूद था। काला तख्ता स्वभाव से पारदर्शी नहीं था और किसी उद्योग से पारदर्शी नहीं बनाया जा सकता।

अपनी मुक्ति की सम्भावना के सम्बन्ध में हरेक मनुष्य में ज़ोर से गहरा उतरा हुआ स्वाभाविक विश्वास, आत्मा की उस भीतरी विशुद्धता और केवल पापशून्यता को सिद्ध करता है कि जो केवल कुछ काल से मलिन दिखाई देता है। यह विश्वव्यापी स्वाभाविक विश्वास उस अस्वाभाविक सिद्धान्त को झूठा करता है कि आत्मा स्वभाव से पापी है, और जो हमें उस नतीजे पर पहुँचा देता है कि काले पटरे के समान वह कभी पारदर्शी या स्वच्छ नहीं बनाया जा सकता। मनुष्य की सच्ची प्रकृति ईश्वरत्व है। यदि परमेश्वर मनुष्य का अपना आत्मा ( स्वरूप ) न होता, तो किसी सिद्ध या महात्मा का अवतार इस संसार में कभी न हो सकता।

राम कहता है, "मत डरो, बाहर आओ, अपना सब बल और तेज जमा करो, और बहादुरी से अपने जन्मस्वत्व पर

अधिकार जमाओ, मैं वह हूँ"। डरो मत, कांपो नहीं।

सिनाई पहाड़ी पर चलते हुए मूसा ने एक झाड़ी को जलता हुआ देखा। उसने पूँछा, "तुम कौन हो, वहां कौन है?" वह चाहे ज़ोर से न बोला हो, किन्तु वह उस विचित्र ज्वाला से बड़ा चकित हुआ, जिसने कुंज को प्रकाशित कर रक्खा था, पर जलाया नहीं था। झाड़ी से उत्तर आया, "मैं हूँ जो कुछ वास्तव में मैं हूँ"। यह विशुद्ध "मैं हूँ" तुम्हारा स्वरूप वा आत्मा है।

तुम्हारी आत्मा, तुम्हारी सच्ची प्रकृति, स्वच्छ रत्न, तेजस्वी बिल्लौर के समान है। इसके पास कोई काली वस्तु रक्खो और स्फटिक काला जान पड़ता है। विशुद्ध स्फटिक के पास कोई लाल वस्तु रक्खो और विशुद्ध स्फटिक लाल मालूम पड़ता है, और इसी तरह अन्य रंगों का हाल है। वास्तव में विशुद्ध बिल्लौर बेरंग है। वह सर्व रंगों से परे है, सारी सुर्खी, कालिस या किसी दूसरे रंग से परे है। वह है जो कुछ वास्तव में वह है, इसी प्रकार तुम्हारी आत्मा, तुम्हारा सच्चा स्वरूप "जो कुछ वास्तव में वह है" है। वह विशुद्ध वास्तव में "मैं हूँ" है।

यह एक मनुष्य भारत में है। वह उस पवित्र स्वरूप, पवित्र आत्मा के पास एक काला, हिन्दू रंगका, चिथड़ा रखता है और आत्मा स्फटिकवत रंगाभास होता है, मानो वह उसी रंग की है। विशुद्ध "मैं हूँ", "मैं एक हिन्दू हूँ" हो जाता है। अमेरिका में, शुद्ध स्वरूप, विशुद्ध स्फटिक, नाम और रूप से परे बेरंगीन आत्मा के पास,एक यानकी (Yankee), मान-लीजिये, एक पीला चिथड़ा रखता है, और विशुद्ध "मैं हूँ", "मैं एक अमेरिकावासी हूँ" के रंग में रँग जाता है। एक दूसरा मनुष्य आता है, और विशुद्ध आत्मा तथा पारदर्शी

स्फटिक के पास, मानलीजिये, वह एक लाल चिथड़ा या लाल कागज़का एक टुकड़ा रखता है, और पवित्र "मैं हूँ", "मैं एक नारी हूँ" के रंग से रंग जाता है। दूसरा कोई दूसरी तरह का रंग आत्मा के पास रखता है, और कहता है "मैं साहित्य का आचार्य ( एम. ए. ) हूँ"। इस तरह हम देखते हैं, एक कहता है "मैं ईसाई हूँ", दूसरा कहता है "मैं हिन्दू हूँ", अन्य कोई कहता है "मैं यानकी हूँ", दूसरा कहता है "मैं जौह्न बुल (John Bull) हूँ", दूसरा कहता है "मैं बच्चा हूँ", दूसरा कहता है "मैं नारी हूँ", दूसरा कहता है "मैं चीता हूँ," इत्यादि। विशुद्ध, सच्चा स्वरूप, बेरंगीन, स्वच्छ, प्रकाशमान आत्मा, ॐ, या "मैं हूँ" सब में सामान्य है, और अनन्य तथा वही है, निर्विकार है, वास्तव में उसमें कोई रंग नहीं है। तुम्हारे ही मूर्खतापूर्ण विशेषण ने उस पर रंग चढ़ाया है। एक स्वच्छ दर्पण ले लो और उसके पास कोई रंग रख दो। रंग उसमें उतर नहीं जाता, वह उसमें प्रतिबिंबित होता है, और उससे संयुक्त नहीं है। स्फटिक सदा विशुद्ध और बेरंग है। "मैं हूं" सर्वव्यापक और सार्वभौम है। वह सर्वत्र तुम में उपस्थित है। "मैं हूं" का वही विचार सिंह और चीते प्रकट करते हैं। यह पवित्र "मैं हूँ" तुम हो। अपने पास रक्खे हुए कागज के रंगीन टुकड़े या चिथड़े से अपने को एक कर देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि एक समय ऐसा भी था जब यह निरवयव, विशुद्ध आत्मा दूसरे रूप में बसता था। "मैं हूँ" ने दूसरा शरीर धारण किये था। एक समय था जब किसी पूर्व जन्म में तुम्हें समझ पड़ता था "मैं सिंह हूँ" या "मैं बैल हूँ"।

सच्चे स्वरूप, वास्तविक "मैं हूँ" का, जो कल, आज, और सदा वही है, अनुभव प्राप्त करने से स्वतंत्रता और

आनन्द तुम्हें मिलता है। विशुद्ध "मैं हूँ" को काल नहीं स्पर्श करता, क्योंकि पूर्व जन्म में विशुद्ध "मैं हूँ" वही रहा। यह देश से दूषित या मलिन नहीं होता, क्योंकि ये सब पदार्थ स्वयं वही "मैं हूँ" के अधिकार में हैं। उसके लिये अखिल काल "अब" और सम्पूर्ण देश "यहाँ" है। यह विशुद्ध शब्द "मैं हूँ" नित्य वस्तु, निर्विकार सत्य का सूचक है। अय, यही "मैं हूँ" है जो ॐ से प्रतिपादित होती है। विशुद्ध "मैं हूँ", "मैं वह हूँ" का प्रतिनिधित्व ॐ द्वारा होता है।

फार्सी भाषा के अनुसार ॐ (ओ अम), या "मैं वह हूँ", "मैं ब्रह्म हूँ" है। "मैं हूँ" की पवित्र कल्पना को ॐ प्रतिपादन करता है।

(1) In a thousand forms may thou attempt surprise,
Yet, all-beloved one, straight know I thee.
Thou may with magic veils thy face disguise,
And yet, all present one, straight know I thee.

(2) Upon the cypress's purest, youthful bud,
All-beauteous growing one, straight know I thee.
In the canal's unsullied, living flood,
All captivating one, well know I thee.

(3) When spreads the water-column, rising proud,

All-sportive one, how gladly know I thee;
When, e'en in forming is transformed the cloud,
All figure-changing one, there know I thee.

(4) Veiled in the meadow's carpet's flowery charms,
All chequered starry fair one, know I thee;
And if a plant extend its thousand arms,
O, all-embracing one, there know I thee.

(5) When on the mount is kindled morn's sweet light,
Straight-way, all-gladdening one, salute I thee,
The arch of heaven o'erhead grows pure and bright,
All heart-expanding one, then breathe I thee.

(6) That which my inward, outward sense proclaims,
Thou all-instructing one, I know through thee;
And if I utter Allah's hundred names,

A name with each one echoes meant for thee.

(१) हज़ारों रूपों में चाहे तू विस्मित करने की चेष्टा कर, तथापि ऐ सब के प्यारे! तुझे मैं झट जान जाता हूँ।

मायावी घूँघटों से चाहे तू अपना मुखड़ा छिपा, तथापि, ऐ सर्वत्र उपस्थित रहनेवाले! तुझे मैं झट जान जाता हूँ।

(२) सरू (शमशाद) की पवित्रतम, नौजवान कोंपल पर, ऐ सर्व सुन्दरतामय बढ़ते हुए! तुझे मैं झट पहचान जाता हूँ।

नहर की निर्मल, सजीव धारा में, ऐ सब को मोहनेवाले! तुझे मैं खूब जान जाता हूँ।

(३) जब जल-धारा सगर्व चढ़ती हुई फैलती है, ए सर्व कौतुकी! तुझे मैं अत्यन्त प्रसन्नता से जान जाता हूँ;

जब (धारा) बनने में भी मेघ का रूपान्तर होता है, ऐ सर्व रूप परिवर्तक! मैं तुझे झट जान जाता हूँ।

(४) तृण-हरित भूमि की दरी को फूलदार शोभा में ढके हुए, ऐ चित्र विचित्र तारामय रूपवान! मैं तुझे जान जाता हूँ;

और यदि कोई पौधा अपनी हज़ारों भुजायें (शाखायें) फैला दे, अरे, सब को अंक में भरनेवाले! वहां भी मैं तुझे जान जाता हूँ।

(५) पहाड़ी पर, तड़के का मधुर प्रकाश जब प्रज्वलित होता है: सीधे, ऐ सब को प्रफुल्लित करनेवाले! मैं तेरी वन्दना करता हूँ,

नभ मण्डल शिर के ऊपर निर्मल और प्रकाशवान होता है, ऐ सर्व-हृदय-विस्तृत करनेहारे! तब मैं तेरा साँस लेता हूँ!

(६) वह जिसकी घोषणा मेरी बाह्य और भीतरी इन्द्रिय करती है, ऐ जो तू सब का शिक्षक है ! मैं तेरे द्वारा उसे जान जाता हूँ।

और यदि अल्लाह के सौ नाम मैं लेता हूँ, तो हर प्रति ध्वनि के साथ नाम तेरे से अभिप्रेत है।

राम हज़रत मूसा के बारे में कुछ शब्द कहना चाहता है। जब हज़रत मूसा ने झाड़ी में एक आवाज़ सुनी, । तब उसे अपने पास एक फुफकारता हुआ सर्प दिखाई दिया। डर से मूसा की बुद्धि रफूचक्कर हो गयी, वह थरथराने लगा, छाती धड़कने लगी, उसका खून नाड़ियों में जम गया, वह किसी काम का न रहा। एक आवाज़ ने उससे चिल्ला कर कहा, "हे मूसा, मत डर, साँप को पकड़ ले, उसे मज़बूती से पकड़, हिम्मत कर, उसे पकड़ लेने का साहस कर"। हज़रत मूसा फिर भी काँपता रहा और उस आवाज़ ने फिर कड़क कर उससे कहा, "मूसा ! आगे बढ़, सर्प को पकड़ ले"। मूसा ने पकड़ लिया और देखिये, वह एक उज्ज्वल और अत्युत्तम छड़ी थी। अब इस कथा का क्या अभिप्राय है ? साँप साँच (सत्य) का स्थानीय है। आप जानते हैं कि हिन्दुओं और अन्य पूर्वदेशियों के लिये, सत्य या अन्तिम तत्त्व का द्योतक शेषनाग है। वृत्त के वृत्त बनाता हुआ, पेंचदार रूप में सर्प अपनी कुंडली लगाता है, और अपनी पूँछ लौटकर अपने मुख में रख लेता है। और इसी तरह इस दुनिया में हम देखते हैं कि गोलों के भीतर गोले (वृत) हैं, हरेक वस्तु मंडलाकार घूम घूम कर अपने को दोहराती है और अन्तिम सिरे मिल जाते हैं। यह एक सार्वभौम कानून या सिद्धान्त है जो सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है।

साँप को पकड़ने का अर्थ धीरतापूर्वक अपने आप को

दैवी क़ानून धारण करनेवाले या विश्व के शासक की स्थिति में रखना है। वीरतापूर्वक अपने आपको उस स्थिति में रक्खो और परमेश्वर से अपनी एकता अनुभव करो।

हज़रत मूसा गुलामी में पड़ी हुई जाति का था। यहूदी उन दिनों बुरी हालत में थे। वे अपने देश से निकाल दिये गये थे और घर रहित होगये थे। अनेक पीड़ाओं के कारण जो उन्हें भोगनी पड़ी थीं यह उनके लिये स्वाभाविक होगया था कि वे परमेश्वर को एक घोर ज़ालिम और सर्वथा स्वेच्छाचारी समझें।

यदि बैल एकत्र जमा होकर धार्मिक महासभा (वा पंचायत) करें, तो ईश्वर का वे क्या लक्षण करेंगे? वे ईश्वर को एक महान प्रतापी बैल बतावें या वर्णन करेंगे, कि जिसके डर से किसी भी दूसरे बैल के प्राण छूट जाँयगे। यदि सिंह अपनी धार्मिक महासभा करें, तो उनकी ईश्वर की कल्पना एक सब से बड़ा और सब से अधिक बलवान सिंह होगी, उन सब से अधिक भयानक सिंह होगी। क्या अपनी योग्यता से परे की किसी चीज़ की धारणा तुम कर सकते हो? क्या तुम अपने आप से बाहर कूद सकते हो? नहीं। सिंहों को निर्णय के लिये बैठने और ईश्वर पर विचार आरम्भ करने दो, वे उसे भीमकाय, दारुण सिंह बना देंगे। इसी तरह यदि डरे हुए लोग निर्णय के लिये बैठें और ईश्वर का विचार करने लगें तो वे लाचार होकर उसे महान दास-स्वामी, हौव्वा, महान् मालिक, भयानक हाकिम (शासक) मानेंगे। इस प्रकार, यहूदियों ने स्वभावतः परमेश्वर को भीमकाय, प्रतापी शासक, महान स्वामी चित्रित किया है।

अधिकांश पूर्वीय और विशेषतः सेमिटिक (Semetic) भाषाओं में ईश्वर के लिये मालिक शब्द है, जिसका उलथा

( अंग्रेजी में ) प्रायः 'मास्टर' (मालिक) किया जाता है। इस नाम के मूल के सम्बन्ध में कुछ शब्द यहाँ पर वे मौक़ा न होंगे।

यहूदियों में बहुत सी जातियाँ थीं। और हरेक जातिका अपना २ अलग देवता था। एक जाति का देवता एक समय मोलोक (moloch) कहलाता था। इन जातियों की आपस की लड़ाई में इसराइल की इस जाति की विजय हुई, और फलतः इस जाति के देवता मोलोक ने और सब देवताओं को पस्त कर दिया और सब यहूदियों का देवता बन गया। सेमिटिक जातियों के अद्वैत स्वरूप साकार ईश्वर के मालिक या मास्टर नाम का मूल इससे स्पष्ट होता है। उन दिनों अद्वैत रूप मालिक की कल्पना सर्वोपरि विज्ञान था। यह उनका अज्ञात के अगाध पार को चीर जाने का प्रयत्न था। यह उनके अनुकूल था। परिस्थिति अब बदल गई। अधिकांश लोग अब एकाधिपत्य नहीं चाहते। वे अब स्वराज्य चाहते हैं। अमेरिका में लोग स्वाधीनता चाहते हैं, और इंग्लैंड में तथा सर्वत्र लोग स्वाधीनता चाहते हैं। विज्ञान ने उन्नति की है। हरेक वस्तु का विकास और उन्नति हुई है। अब वह समय आया है कि ईश्वर की प्राचीन, उद्धत और प्रभुताशील धारणा "मैं ईश्वर हूँ" की स्वाधीनता-प्रेरक कल्पना में विकसित होजाय, जैसी कि वेदान्त की शिक्षा है। जैसे इंग्लैंड का पूर्ण एकाधिपत्य क्रमशः मर्यादित होता गया, उसी तरह इस शरीर धारी ज़ालिम परमेश्वर से उसकी सब शक्तियाँ छीन कर धार्मिक स्वाधीनता लाभ करने का भी समय आ गया है। यहूदी राजनैतिक गुलामी में रहते थे, उनका देवता उनसे अलग मालिक होना ही चाहिये था। तुम राजनैतिक और सामाजिक स्वाधीनता भोगते हो, तुम्हारा

देवता तुम्हारा निज स्वरूप या निजआत्मा होना चाहिये। आज-कल लोग गुलामी में नहीं रहना चाहते। बंधन और दासता का शीघ्रता से कूच हो रहा है, विकास का बोलबाला है और हरेक वस्तु को आगे बढ़ना तथा ऊपर चढ़ना चाहिये। क्या अकेला तुम्हारा देहधारी (व्यक्तिगत) ईश्वर ही चुपचाप खड़ा रहे? नहीं।

एक समय ईश्वर का प्रतिपक्षी शैतान था, और उसकी हस्ती परिमित करने को ईश्वर के कुछ भृत्य और दूत थे। उसने सात दिनों में दुनिया की सृष्टि की। यह कब की बात है? जब हज़रत मूसा ने अपने ग्रंथ लिखे थे। आप जानते हैं कि मूसा को हुए हज़ारों वर्ष बीत गये। दुनिया में विप्लव हो चुका है। वह किस तरह का परमेश्वर है जो बढ़ता नहीं। हरेक वस्तु को बढ़ना और विकसित होना चाहिये। अब तो शैतान सरीखा कोई प्रतिस्पर्धी तुम्हारे परमेश्वर के पास न होना चाहिये। उसकी सत्ता को परिमित करनेवाली कोई दूसरी वस्तु न होनी चाहिये। संसार के निर्माता या बनानेवाले मुख्य शिल्पी के व्यवसाय से उसे ऊपर होना चाहिये। अब समय है कि सारा संसार वेदान्त को ग्रहण करे। अब समय है कि सारा संसार साहस पूर्वक सत्य के इस फुफकारते हुए सर्प को उठा कर पकड़ ले। पूर्ण सत्य तुम्हारे पास आता है और तुम से कहता है कि "तुम परमेश्वर हो, परमेश्वर तुम से पृथक नहीं है, परमेश्वर इस स्वर्ग वा उस नरक में नहीं है, बल्कि तुम्हारे अपने आप अर्थात् निज स्वरूप में है"। यहाँ इस भावना के अनुभव में तुम्हें पूर्ण स्वतंत्रता का लाभ है।

भय से आप अपने मस्तिष्कों को क्यों पस्त करते हो

और प्रार्थनाओं में अपनी शक्तियों को क्यों लगाते हो? अपनी आन्तरिक प्रकृति का प्रतिपादन करो, सत्य को मत कुचलो, दिलेरी से निकल पड़ो, निर्भीकता से उच्चस्वर से पुकारो "मैं परमेश्वर हूँ, मैं परमेश्वर हूँ"। यह तुम्हारा जन्म-स्वत्त्व है।

साधारण लोगों के चित्त की वही दशा है जो हज़रत मूसा की थी जब उसने आवाज़ सुनी थी। मूसा गुलामी की हालत में था, और सर्प देख कर वह काँपने लगा। यही हाल लोगों का होता है, जब वे यह ध्वनि, यह पवित्र ज्ञान, "मैं हूँ", यह पवित्र सत्य ॐ सुनते हैं। जब वे इसे सुनते हैं, वे थर्राते और हिचकते हैं, इसे पकड़ने की हिम्मत उनमें नहीं होती। नीचे के जैसे शब्द लोगों को सर्प की फुफकार के समान सुनाई पड़ते हैं:—"तुम स्वयं परमेश्वर हो, पवित्रों के पवित्र हो, दुनिया कोई दुनिया नहीं है, तुम सब में सब कुछ हो, परम शक्ति हो, जिस शक्ति का वर्णन कोई शब्द नहीं कर सकते, कोई देह या मन नहीं कर सकते, तुम विशुद्ध "मैं हूँ हो, वही तुम हो"।

स्फटिक के पास से इस पीले, लाल, या काले कागज़ के टुकड़े को हटादो, अपनी वास्तविक सत्ता में जाग पड़ो और अनुभव करो "मैं वह हूँ", "मैं सर्व में सर्व रूप हूँ"। लोग इससे हटना चाहते हैं। वे साँप से डरते हैं। अरे, साँप को पकड़ लो, और तब, ऐ आश्चर्यों के आश्चर्य, यह सर्प तुम्हारे हाथ में बादशाही का दण्ड हो जायगा। जब तुम्हें भूख लगेगी तब फुफकारता हुआ सर्प तुम्हें खिलावेगा, तुम्हें प्यास लगने पर तुम्हारी प्यास बुझावेगा, तुम्हारे मार्ग से सब रंजों और कठिनाइयों को साफ कर देगा।

बनों में हज़रत मूसा ने इस डंडे से एक चट्टान छुई, और

चट्टान से घुल-घुलाता हुआ जगमगा जल निकल आया। जब इसराइल के पक्षवाले अपनी रक्षा के लिये भाग रहे थे, तब उन्हें लाल समुद्र पार करना पड़ा। वहाँ वह भयंकर समुद्र खुली हुई कब्र की तरह उन्हें निगल लेने को उनके सामने खड़ा था। हज़रत मूसाने अपने डंडे से लाल समुद्र (Red Sea) को छुआ और पानी फटकर दो टुकड़े हो गया, सूखी भूमि निकल आई और इसराइली लोग पार उतर गये।

देखने में यह फुफकारता हुआ सर्प, यह सत्य, भीषण जान पड़ता है, किन्तु तुम्हें इसे उठा लेने और मज़बूती से पकड़े रहने की हिम्मत करना है, तुम देख कर विस्मित होगे कि तुम विश्व के सम्राट हो, महातत्त्वों के मालिक हो, नक्षत्रों के हाकिम हो, आकाशों के नियन्ता हो। तुम अपने को सर्व-रूप पाओगे। इस-सत्य को वर्तने में और इस दैवी सिद्धान्त को आलिंगन करने में लोग झेंपते हैं। बढ़ आओ, हिचको नहीं। इस सत्य को निर्भयता से ग्रहण करो। इसे अपनी छाती से लगाने की हिम्मत करो और इसे अपना आप बनाओ।

"मैं ईश्वर हूँ" न कहना पाप है। आत्मा को चुराना निकृष्ट चोरी है। "मैं मर्द हूँ या औरत" अथवा अपने आपको दीन रींगनेवाला कीड़ा कहना झूठ और नास्तिकता है। कंजूस का अभिनय न करो। कृपण के घर में सब निधियां होतीं हैं किन्तु वह एक कौड़ी भी नहीं निकालना चाहता। सारा संसार तुम्हारे अन्दर है, सम्पूर्ण सृष्टि तुम्हारी अपनी है। क्यों इसे छिपाते हो? इसे काम में क्यों नहीं लाते? इसे अमल में लाओ। अपने ही आत्मा के अमृत का खूब पान करो। अपनी निजी स्वाभाविक आन्तरिक बादशाहत क्यों नहीं पाते

भारत में लोग इस पूर्ण सत्य के अनुभव को भूले हुए हार

का फिर मिल जाना कहते हैं। एक मनुष्य अपने गले में एक बड़ा मूल्यवान और लम्बा हार या माला पहने था। किसी तरह वह उसकी पीठ पर सरक गया और वह उसे भूल गया। अपनी छाती पर उसे जगमगाता न देख कर वह उसे ढूंढ़ने लगा। सब ढूँढ़ना व्यर्थ हुआ। उसने आँसू बहाये और अपना अमूल्य हार खो जाने के लिये रंज किया। उसने किसी से यदि उस से हो सके तो उसे ढूँढ़ देने को कहा, एक ने उससे कहा, "अच्छा, यदि मैं तुम्हारा हार ढूँढ़ दूं तो मुझे क्या दोगे"? उसने उत्तर दिया, "जो कुछ तुम मांगोगे मैं दूंगा" उस आदमी ने अपना हाथ अपने मित्र के गले में पहुँचाया और हार छू कर कहा, "यह है हार। यह खोया नहीं था, यह अब भी तुम्हारे गले में पड़ा था किन्तु तुम इसे भूल गये थे"। कैसा सुखकर आश्चर्य है! इसी प्रकार तुम्हारी परमेश्वरता तुम्हारे अपने आप से बाहर नहीं है, तुम तो पहले ही से ईश्वर हो, तुम वही हो। यह एक विचित्र विस्मृति है जिसके कारण तुम अपने सच्चे आत्मा को, अपनी सच्ची परमेश्वरता को भूल जाते हो। इस अज्ञान को दूर करो, इस तम का नाश करो, इसे हटाओ और तुम अब भी ईश्वर हो। तुम स्वभाव से ही मुक्त हो। अपनी गुलामी की दशा में तुम अपने को भूल गये हो।

एक राजा नींद में अपने को भिखारी की हालत में पा सकता है। वह स्वप्न देख सकता है कि मैं फकीर हूँ, किन्तु यह फकीरी उसकी सच्ची बादशाहत में हस्तक्षेप नहीं कर सकती।

ऐ राजाओं के राजा! इन सब शरीरों में मेरे प्रिय आत्मा! ऐ पूर्ण सम्राट! ऐ कल्याण के सार भूत! ऐ प्यारे! तुम अज्ञान के स्वप्न में अपने आपको गुलाम न बनाओ। उठो और अपने

परम प्रताप की दशा में शासन करो, तुम परमेश्वर हो, तुम और कुछ हो ही नहीं सकते। भीतर की पूरी शक्ति से, सब हिचक, दुर्बलता और अशक्तता को दूर करके ठीक विशुद्ध "मैं हूँ" या "आत्मा" में कूदो। तुम परमेश्वर हो। वह और मैं एक हैं। कैसा चैन देनेवाला विचार है, कैसी धन्य कल्पना है। यह सब मुसीबत हर लेती है और हमारे सब बोझे उतार लेती है। अपने आप से बाहर मत भटको। अपने केन्द्र में जमे रहो; आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा है कि "यदि मुझे कोई स्थिर आधार, खड़े होने का स्थल मिल जाय, तो मैं दुनिया को हिला सकता हूँ"। किन्तु वह बिचारा स्थिर विन्दु न पासका। स्थिर विन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है तुम्हारा आत्मा। इसे पकड़ो, और सारा संसार तुम चलाने लगते हो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

# प्रणव-प्रभाव व आत्म-साक्षात्कार।

२६ दिसम्बर १६०२ को हर्मेटिक ब्रादरहुडहाल, सैन फ्रांसिस्को में दिया हुआ व्याख्यान।

**प्रश्न**—ॐ को विना उसे समझे हुए उच्चारण करने से क्या कोई विशेष लाभ हो सकता है?

**उत्तर**—हिमालय के जंगलों में रहनेवाले साधु ॐ उच्चारण करते हैं, या अन्य कुछ गाते और बजाते हैं। बहुधा साँप, हिरन, जंगलों के बनैले पशु अपने स्थान छोड़कर साधुओं के पास आ जाते हैं। अब, ये जंगली पशु संगीत विद्या के नियम कुछ भी नहीं जानते, ॐ उच्चारण के बारे में भी कुछ नहीं जानते, फिर भी उन पर प्रभाव पड़ता है। यदि केवल ध्वनि ऐसा अपूर्व प्रभाव साँपों और हिरनों पर डालती है, तो ठीक समय पर निरन्तर उच्चारण की हुई केवल ध्वनि क्या आपके जीवन पर कोई प्रभाव न डालेगी?

संगीत के हरेक गीत में तीन बातें या रूप होते हैं। एक तो गीत के अर्थ, दूसरे संगीत विद्या के नियम, तीसरे गीत की भाषा या ध्वनि। यदि गीत के सम्पूर्ण तीनों रूपों से आप भली भाँति परिचित हैं, तो आप को गीत से अद्भुत सुख मिलता है। किन्तु यदि आप एक भी अंग से परिचय रखते हैं, तो भी आप किसी अंश तक उसका मज़ा लूट सकते हैं। साँप और हिरन केवल तानें सुनते हैं, वे गीत के अर्थ और संगीत के नियमों के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानते। फिर भी उन्हें आनन्द आता है। कुछ लोग गायक के ताल-सुर और रागादि का सुख लूटते हैं। उन्हें गीत के अर्थ से कोई मतलब नहीं। दूसरे केवल गीत के अर्थ का सुख भोगते हैं, उन्हें

संगीत के नियमों की कुछ भी जानकारी नहीं होती। इसी तरह, ॐ में तीन पहलू हैं। पहला केवल ध्वनि है, केवल मंत्र है जैसा उसे मुख से उच्चारण किया जाता है। दूसरा है अक्षर का अर्थ, जिसका अनुभव वेदना के द्वारा करना होता है। तीसरा है ॐ को अपने चरित्र में लागू करना, अपने जीवन और अपने कार्यों में उसे गाना (अमल में लाना)। जो मनुष्य इन सब प्रकारों से ॐ गाता है, अपने अधरों से इसे उच्चारता है, हृदय से इसे अनुभव करता है, और कर्म के द्वारा इसे गाता है, वह अपने जीवन को अवच्छिन्न गान बना देता है। हरेक व्यक्ति के लिये वह ईश्वर है। किन्तु यदि तुम उसे भावपूर्ण चित्त से नहीं गा सकते और न अपने कार्यों से उसे उच्चार सकते हो ( अर्थात् न उस पर अमल कर सकते हो ), तो भी उसे उच्चारणा छोड़ न दो, मुख से उच्चारते रहो, यह भी निरर्थक न होगा। यदि तुम उसे केवल भावपूर्वक गा सकते हो और कार्यों या ध्वनिकारी इन्द्रियों के द्वारा नहीं गा सकते, तो भी किसी अंश तक तुम्हें लाभ होगा। यदि तुम उसे केवल कर्म द्वारा गा सकते हो और भावनाओं तथा मुख के द्वारा नहीं गा सकते, तो इतना भी श्रेष्ठ और उत्तम है। किन्तु यदि तुम उसे मुख से जपना शुरू करो, तो भावपूर्ण और कर्ममय गान स्वभावतः होने लग पड़ेगा।

कुछ ऐसी चीज़ें हैं जिनके ज़िक्र ही से मुँह में पानी भर आता है, जैसे नारंगियाँ, नींबु, इत्यादि। इनकी चर्चा से ही एक प्रभाव पड़ता है और इनका खाना तो निश्चय पूर्वक पूरा प्रभाव पैदा करता है। ठीक इसी तरह ॐ की केवल ध्वनि या जाप कोई प्रभाव अवश्य डालेगी और यदि तुम उसे पूर्ण रूप से ग्रहण करो तो पूरा प्रभाव पड़ेगा। प्रारम्भ में

चाहे तुम्हें प्रभाव न समझ पड़े, किन्तु निश्चय रक्खो, अन्त में अवश्य फल देगा।

जल गणित से हमें मालूम होता है कि यदि एक ऐसा हौज़ हो जिसकी पेंदी में डाट लगी हो और हम हौज़ में पानी भरें तो जितना ही पानी हम भरते जांयगे उतनाही दबाव पेंदे पर बढ़ता जायगा, और जलगणित के नियमों से हम हिसाब लगा सकते हैं कि डाट को ठेल कर और पानी को पेंदे से बाहर निकाल देने के योग्य जल का काफ़ी दबाव पड़ने के लिये ठीक कितना पानी हौज में डालना चाहिये। इसी तरह यदि आप अपनी देह के हौज में ॐ भरते जांय, तो मानो दबाव बढ़ने के रूप में उसका प्रभाव पड़ता रहेगा, किन्तु सर्वसाधारण के लिये प्रभाव का प्रगट होना एक बात है और प्रभाव का उत्पन्न होना दूसरी बात है। तथापि ऐसा समय आवेगा जब आप देखेंगे कि हौज़ की पेंदी से मानो डाट हट गई और जल आप से उमड़ कर बहने लगा। किसी समय तक प्रभाव चाहे प्रगट न हो किन्तु प्रभाव मौजूद ज़रूर है। यह इस तरह है, एक नई व्याही कन्या थी, जो सरलता की साक्षात मूर्ति थी। उसे बच्चा जनने का अनुभव नहीं हुआ था। अपने गर्भ के पहले महीने में उसे अपने स्वभाव में कुछ अन्तर समझ पड़ा और सरलता से उसने विचारा कि आगामी महीनों में कुछ और अन्तर नहीं पड़ेगा। भारत में दुलहिन सास के घर पर रहती है, और वह दुलहिन तथा उसके बच्चों की जरूरतों को पूरा करती है। इस युवती ने एक दिन सफाई से अपनी सास से यों कहा, "अम्मा! अम्मा! जब मेरे बच्चा पैदा होने को हो, तब मुझे दया करके जगा देना, कहीं ऐसा न हो कि मेरे बिना जाने बच्चे का जन्म हो जाय"। सास ने जवाब दिया, "प्यारी बहू! वह समय आने

पर किसी को तुम्हें जगाने की ज़रूरत न पड़ेगी, तुम ऐसी हालत में होगी कि तुम खुद ही अपनी चीखों और पुकारों से सब पड़ोसियों को जगा दोगी"। गर्भ के दिनों में विचित्र परिवर्तन हो रहा था, प्रभाव पड़ रहा था यद्यपि माता को उसका ज्ञान नहीं था। जब ठीक समय आता है तब प्रभाव प्रगट हो जाता है। इसी तरह, इस मंत्र से पेट भरते रहो, अपने को पुष्ट करते रहो, इस पौष्टिक दूध को खूब पीते रहो, और ठीक समय पर प्रभाव प्रगट होगा। तुम्हें अधीर न होना चाहिये।

जब राम बच्चा था, तब वह और कई दूसरे बच्चे अनाज तथा जौ या चावल के कुछ दाने ले आते थे और आँगन की बगिया में गढ़े खोदते थे। इन गढ़ों में हम इन बीजों को कुछ जल सहित रख देते थे और फिर इन्हें ढक देते थे। इस काम में हम लोग इतना एकाग्र हो जाते थे कि हमें भोजन की सुध नहीं रहती थी। बीज क्या पैदा करते हैं, यह देखने को हम उद्विग्न हो जाते थे, हम उन सूराखों से कुछ उग आने के लिये अधीर हो जाते थे, जिनमें कुछ ही मिनट पहले हम अनाज, जौ और चावल के बीज बोये थे। एक क्षण के लिये भी हम से वह स्थान छोड़ा नहीं जाता था, इस आशंका से कि कहीं हमारे बेजाने बीज उग न आयें। हम बड़े चिन्तित रहते थे और बोने के लगभग एक घंटे बाद हम बहुत नगीच से उस स्थान की जाँच करते थे कि अँखुए (अंकुर) निकले हैं या नहीं। हमें कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। हमें निराशा होती थी, और थोड़ी मट्टी हटाकर हम देखा करते थे कि कुछ हुआ है या नहीं। फिर भी कुछ नहीं दिखाई पड़ता था। थोड़ी और मट्टी हम हटाते थे और कुछ भी उगना शुरू नहीं होता था। फिर २ और भी मिट्टी हम हटाते थे और देखिये, बाजों

में कोई रूपान्तर नहीं होता था। उन बच्चों की तरह अधीर होकर एक चौथाई घंटे से कम में फल काटने की आशा न करो। तुम बीज बो सकते हो, किन्तु इतनी थोड़ी देर में तुम फसल नहीं काट सकते। उसमें अन्ततः कुछ समय अवश्य लगेगा, किन्तु अत्यन्त निश्चय पूर्वक प्रभाव पैदा होगा।

**प्रश्न**—हमें बताया गया है कि मानसिक वैद्य (mental Healers) ऐसे कारण अपने लिये जमा कर रहे हैं जिनका परिणाम भावी जन्म में भयंकर रोग होंगे। क्या यह सत्य है?

**उत्तर**—नहीं। मानसिक वैद्य जो कुछ कर रहे हैं उसका अवश्यं भावी परिणाम भावी जन्म में दारुण रोग नहीं है। मानसिक चिकित्सा में खुद ऐसी कोई बात नहीं है जिस का परिणाम दारुण रोग हो। सब प्रकार के सांसारिक काम करनेवाले लोग यहाँ हैं, क्या ऐसे कार्य का परिणाम दारुण रोग होना चाहिये? नहीं। मानसिक वैद्य साधारण लोगों की तरह एक चिकित्सा कार्य कर रहे हैं। यदि साधारण वैद्य का काम भावी जन्म में ऐसे भयंकर परिणामों का उत्पादक हो सकता है तो मानसिक वैद्यों का काम ऐसे दारुण फलों का पैदा करनेवाला होगा। यदि वैद्य ऐसा कर्म अपने लिये नहीं निर्माण करते तो मानसिक वैद्य भी नहीं करते। राम से प्रश्न किया गया था कि वह मानसिक चिकित्सा क्यों नहीं करता। उत्तर दिया गया था कि राम की दृष्टि में शारीरिक जीवन इतने महत्त्व का नहीं है कि विशेष ध्यानका पात्र समझा जाय। ईसा अपनी रोग हरने की शक्तियों का व्यवसाय नहीं करता था। जब वह किसी को चंगा करता था या जब कोई उसके द्वारा चंगा होता था, वह कहता था, "तेरे विश्वास ने तुझे चंगा किया है न कि

मैं ने"। यदि राम ऐसा काम करे, तो नतीजा क्या होगा ? हरेक व्यक्ति रोटियों और मछलियों के लिये राम के पास आवेगा। कोई तो आकर कहेगा, "मेरे लड़के को चंगा करदो, यह काम करो और वह काम करो"; दूसरे कहेंगे, "मैं चाहता हूँ कि समाज में ऊँचा स्थान फिर मिल जाय"। ये सब बातें व्यापारिक वृत्ति और रोज़गारीपन लानेवाली हैं। मानसिक चिकित्सा का व्यापार वास्तविक स्वाधीनता के लाभ से हमें वंचित रखता है।

**प्रश्न**—स्थूल शरीर में रहते हुए क्या आत्मा अपने को पूरी तरह से स्पष्ट वा व्यक्त कर सकता है ?

**उत्तर**—यहां पर 'आत्मा' के शब्द को कुछ समझा देना चाहिये। यह एक पानी की तौली है और पानी में सूर्य प्रतिबिम्बित होता है। अब एक तौली से दूसरी तौली में पानी डालो। तुम देखोगे कि दूसरी तौली के जल में सूर्य ठीक उसी तरह प्रतिबिम्बित होता है जैसे पहिली तौली के जल में उसका प्रतिबिम्ब पड़ता था। जल दूसरे बर्तन से तीसरे पात्र में पलट दो। सूर्य की छाया वहाँ भी वैसी ही पड़ रही है। इसी तरह, तुम्हारे बाह्य शरीर की, तुम्हारे स्थूल शरीर की तुलना एक कलस या मिट्टी के मटके से की जा सकती है। कलसे में भरे हुए जल की तुम्हारे सूक्ष्म शरीर से जो मुख्यतः तुम्हारी इच्छाओं, मनोभावों और चित्त का बना है, अद्भुत साम्यता है। मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर स्थूल शरीर की एक तौली से दूसरी में बदल दिया जाता है। कुछ लोगों के अनुसार, जन्मान्तर ग्रहण करने वाला यह सूक्ष्म शरीर ही आत्मा है। किन्तु वेदान्त के अनुसार ऐसा नहीं है। वेदान्त के अनुसार सच्चा स्वरूप अथवा

तेजस्वी आत्मा सूर्यवत् है जो स्थूल शरीर रूपी पहिली तौली के सूक्ष्म शरीर में ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है जैसे दूसरे में। अब, शुद्धात्मा, वास्तविक स्वरूप, सब अवस्थाओं में सदा अपने को पूर्णतया स्पष्ट व्यक्त कर रहा है। शुद्ध तेजस्वी आत्मा में कोई परिवर्तन या उन्नति नहीं हो सकती, वह सदा पूर्ण है। यदि तुम आत्मा शब्द से सूक्ष्म शरीर समझते हो, तो उस अन्तिम अवस्था को प्राप्त करने के लिये कि जहां पुनर्जन्म बंद होजाता है, उसे अनेक जन्म, जीवनियां या योनियाँ मिलती हैं। किन्तु यदि तुम मुक्ति के लिए सचमुच उत्सुक हो, तो इस जन्म में भी तुम पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर सकते हो और पुनर्जन्म को फिर प्राप्त नहीं हो सकते।

मृत्यु क्या है? मृत्यु का अर्थ है शरीररूपी स्थूल वर्तन का टूटना। जब मृत्यु आती है, तब जल मानो एक स्थूल शरीर या तौली से दूसरे में ले जाया जाता है। सूक्ष्म शरीर ने फिर अवतार लेकर दूसरी स्थूल देह पाई है, और इस दूसरी तौली (कलसे) में शुद्ध स्वरूप, ईश्वर ठीक वैसे ही प्रतिबिम्बित होता है जैसे पहिली देहरूपी तौली में होता था। मान लीजिये, शरीर की यह तौली अपनी बारी में ७० वर्ष के काल तक चलती है और फिर टूट जाती है, जो द्रवरूप सूक्ष्म शरीर इस तौली में है वह तीसरी मट्टी की तौली या देह में बदल दिया जाता है। यही पुनर्जन्म है। सच्चा आत्मा सूर्य की तरह तुल्य रूप से सूक्ष्म शरीर में और स्थूल शरीरों की सब विभिन्न २ तौलियों में प्रतिबिम्बित होती है। इस तरह पर शुद्ध आत्मा पुनर्जन्म के सब झगड़ों से परे है। सम्पूर्ण पुनर्जन्म का सम्पर्क केवल सूक्ष्म शरीर से है न कि सूर्य या सच्चे आत्मा से। अब इस बात को और भी साफ कर देना चाहिए।

आप जानते हैं कि सूर्य हर समय पूरी तरह चमकता है। किन्तु जल में प्रतिबिम्बित उसकी प्रतिमा सदा पूर्ण या अविच्छिन्न नहीं होती। जब जल जमी हुई दशा में होता है तब बरफ़ या हिम पर चमकनेवाला सूर्य उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होता। जब पानी वायु रूप में परिवर्तित हो जाता है, तब भी, हम देखते हैं कि, सूर्य की प्रतिमा उसमें प्रतिबिम्बित नहीं होती। इस प्रकार जल की तीन अवस्थाओं ( अर्थात् घन, तरल और वायुरूपी ) में से जल जब जमी हुई अवस्था में होता है तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती, जब जल तरल अवस्था में होता है तब सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित होती है, किन्तु जब जल तीसरी या वायुरूपी दशा में होता है तब फिर हम सूर्य की प्रतिमा का प्रतिबिम्ब नहीं देखते। पानी की दशा में परिवर्तनों के साथ २ सूर्य की प्रतिमा में परिवर्तन होते हैं। ये मट्टी के बर्तन या स्थूल शरीर उद्भिज्जरूप, पशुरूप और मनुष्य रूप हैं। एक समय होता है जब सूक्ष्म शरीर घन अवस्था की तरह बड़ी ही स्थूल प्रकृति का होता है। उस दशा में सूर्य की प्रतिमा प्रतिबिम्बित नहीं होती यद्यपि सूर्य ऊँचे पर समान भाव से चमका करता है। पौधे और नीची श्रेणी के जीव जन्तु बढ़ते और उन्नति करते हैं। किन्तु उनमें "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार नहीं होता, "कर्तृत्व भाव" की वहाँ ज़रा सी भी झलक नहीं होती, दूसरे शब्दों में शुद्ध आत्मा की मूर्ति का कोई चिह्न नहीं होता। प्रकृति के सम्पूर्ण प्रसार की भाँति उनमें सारी तरक़्क़ी या बढ़ती सूर्य के द्वारा हो रही है। किन्तु उनमें सूर्य का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता, जैसे हिमालय की चोटियों या शिखरों पर सूर्य बरफ़ को समेटता या गलाता तो है पर उसके द्वारा प्रतिबिम्बित नहीं होता। उद्भिज्ज और निम्नतर श्रेणी के जीव

जन्तु सूर्य ( आत्मा ) की शक्ति और करतूत से उठाये और चढ़ाये जा रहे हैं, विकास और तरक्की पा रहे हैं, किन्तु वाह्य क्षुद्र शरीर के लिए उनमें सूर्य, आत्मा, के वास्तविक कर्तृत्वभाव और शक्ति का कुछ भी विनियोग नहीं है। उनमें प्रोमीथियंस (Prometheus like) के स्वर्ग से अग्नि चुराने की भाँति कोई भी बात नहीं है, व्यक्तिगत आत्मश्लाघा का "मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ"—कुछ भी विचार या भाव नहीं है।

सूक्ष्म शरीररूपी जल गलित-दशा में, पारदर्शी दशा में, तरल श्रेणी की तौलियों से होता हुआ क्रमशः मनुष्य नामक सुन्दर पात्र में पहुँचता है। और यहाँ परम कर्त्ता, सूर्य, या आत्मा का अद्भुत प्रतिविम्ब पड़ता है। यद्यपि यहाँ भी, पहले की तरह, असली कार्यकर्त्ता सूर्य, अकेला आत्मा है, पर यहाँ अहंकार या दायित्वपूर्ण कर्त्तत्व भाव ( responsible Agent-idea ) के रूप में असली आत्मा की प्रतिमा या छाया सूक्ष्म शरीर में झलकती है। "मैं यह करता हूँ और वह करता हूँ" का यह विचार उद्भिज्जों और निम्नतर जन्तुओं (vegetables and lower animals) में अनुपस्थित हैं। मनुष्य में मिथ्या आत्मा की कल्पना प्रगट होती है। 'मैं कर्त्ता हूँ, मैं करनेवाला हूँ", यही वाह्य वा मिथ्या आत्मा है, जो जल में सूर्य की प्रतिविम्बित प्रतिमा है। यह अहं, यह वाह्य अपना आप झूठा और अवस्तु मात्र है। सच्चा कर्त्ता और सच्चा काम करनेवाला, ईश्वर, सब कुछ करता है। वह ज़िम्मेदार मालिक है, और अज्ञानवश यह ज़िम्मेदारी विशुद्ध सूक्ष्म शरीरद्वारा ओढ़ी और हृदयगत (embosomed) करली जाती है। इस कर्त्तत्व भाव का यह अपनाया जाना झूठे, मायामय, क्षुद्र आत्मा का विधान करना है। यह मिथ्या अहं

उसी तरह असत्य है, जैसे जल में मूर्ति असत्य है। चक्षु-चिकित्सक (Opticians) गणित से सिद्ध करते हैं कि दर्पण या जल में पड़नेवाला प्रतिबिम्ब गुणात्मक (virtual) या भ्रममात्र है। इसी तरह यह उत्तरदायी स्वार्थपरायण अहं गुणात्मक या भ्रम मात्र है। तरल या सूक्ष्म शरीर में विकास सूर्य के द्वारा होता है। सूर्य, आत्मा, स्वयं, या ईश्वर का प्रकाश और ताप सूक्ष्म शरीर अधिकाधिक ग्रहण करता और सोकता है, और इस प्रकार अपनी शारीरिक दशा स्थूलतर से सूक्ष्मतर में बदलता है। जब साधारण मनुष्य निज स्वरूप या आत्मा का प्रकाश अर्थात् ज्ञान अधिकाधिक मात्रा में सोकता या ग्रहण करता है, तब सूक्ष्म शरीर विकास को प्राप्त होता है, उसका सूक्ष्म शरीर समय पाकर मानो वायुरूपी होजाता है, और वायुरूप होकर, यद्यपि स्थूल शरीर के पात्र में अब भी निबद्ध है, तथापि वह सूर्य की प्रतिमा को प्रतिबिम्बित नहीं करता। मिथ्यात्मा व प्रतिमा की सूर्य से अभिन्नता होगई है। यहाँ फिर, उद्भिज्जों और निम्नतर जन्तुओं के मामले की भाँति, हम ज़िम्मेदारी की कोई कल्पना, "मैं यह कर रहा हूँ" का कोई विचार, "मेरे कृतघ्न हो" ऐसी कोई बलवती माँग हम नहीं पाते। बल्कि ऐसी वृत्ति सब लोप होजाती है। यहाँ मिथ्यात्मा, वा सच्चे आत्मा की प्रतिमा, अब नहीं दिखाई देती; सर्वाधिकार, स्वाधीन रखनेवाली, व्यापारिक वृत्ति नष्ट हो जाती है; अपहरणकारी, स्वार्थी अहंकार ( अहं ) से पीछा छूट जाता है।

सामान्यतः वायुओं को एक पात्र से दूसरे पात्र में नहीं उड़ेला जा सकता। घन और तरल द्रव्य एक बर्तन से दूसरे बर्तन में पलटे जा सकते हैं। किन्तु बर्तन टूट जाने पर वायु ( गैस ) जो उसमें होती है हवा में फैल जाती है। सो सब

हिन्दुओं का उद्देश्य उस अत्यन्त सूक्ष्म अवस्था में पहुँचता है जहाँ वे फिर पुनर्जन्म के अधीन न होंगे। हिन्दू माता की सर्वोच्च आकांक्षा ऐसी सन्तान उत्पन्न करना है कि जो मुक्त होगी और जिसका कदापि पुनर्जन्म न होगा।

**प्रश्न**—मुक्त मनुष्य की आत्मा मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर की भाँति बनी रहती है या लीन हो जाती है?

**उत्तर**—जब कोई गैस किसी बर्तन से निकाल दी जाती है, तब सम्पूर्ण विश्व में वह व्याप्त हो जाती है। इसी तरह मुक्त मनुष्य का सूक्ष्म शरीर दुनिया का शरीर होजाता है।

**प्रश्न**—सूक्ष्म शरीर किन पदार्थों से बनता है?

**उत्तर**—सूक्ष्म शरीर मनोरागों, इच्छाओं, मनोभावों, वेदनाओं और संकल्पों से बनता है। मुक्त मनुष्य की इच्छाएं व्यक्तिगत नहीं होतीं। उनमें स्वार्थपरता का कोई चिह्न नहीं होता, और स्वार्थ शून्य, अ-व्यक्तिगत, सार्वभौम इच्छाओं का बना हुआ वह सूक्ष्म शरीर मानो वायुरूपी (गैस की) दशा में होता है और इस वायु (गैस) को धारण करनेवाला स्थूलपात्र जब टूट जाता है, तब फिर गैस सघन समूह नहीं रह जाती, बल्कि समग्र विश्व में लीन हो जाती है।

ईरान के बादशाह साइरस बड़े के सम्बन्ध में कहा गया है कि जब तक इस दुनिया में जिया वह केवल प्रजाजन की सेवा और भलाई के लिये जिया। मरते समय उसने अपने इच्छा पत्र (वसीयत नामे) में आदेश किया कि "मेरा शव शानदार मकबरे में न दफनाया जाय, उसे टुकड़े टुकड़े काट कर सम्पूर्ण ईरान साम्राज्य में वितरण कर दिया जाय ताकि खाद का काम दे"। मुक्त मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की

ठीक यही गति होती है। उसका सूक्ष्म शरीर सारे संसार भर में बाँट दिया या फैला दिया जाता है। हरेक व्यक्ति उसमें हिस्सा लेता है, उसका खून पीता और मांस बोटी बोटी करता है। उसका सूक्ष्म शरीर टुकड़े टुकड़े काट कर सारी दुनिया द्वारा खाया जाता है। यह है अहंकार को हवा में उड़ा देना। वह मनुष्य, चाहे अपना मुँह खोले या नहीं, वह ग्रंथकार हो या न हो, सर्वसाधारण के सामने आवे या न आवे, मानव जाति की अपूर्व सेवा करता है। वह अद्भुत सुधारक है। राजों के सारे निधियों (कोषों) से उसे किसी वस्तु की भी इच्छा नहीं है। दुनिया की सारी पुस्तकें और इंजीलें उसे कुछ भी नहीं सिखा सकतीं। बादशाहों और ज़ालिमों की रीझ और खीझ उसके लिये निरर्थक है। जब तक वह जीता है, उसकी दयामय उपस्थिति, उसका दिव्य दर्शन पवित्रता और सुख का प्रसार करता रहता है। उसके मरने पर दुनिया विलक्षण रूप से सुधर जाती है।

मान लो कि सूर्य-ताप के कारण इस स्थान पर वायु विरल हो जाती है और विरल होने पर स्वभावतः ऊपर चढ़ती है, अपना यहाँ का स्थान खाली करके उठ जाती है। नतीजा क्या होगा? उसकी जगह भरने को, शून्य स्थान ग्रहण करने को चारों ओर से हवा झपटेगी। इस तरह सम्पूर्ण आकाश-मंडल में प्रवृत्तियों और परिवर्तनों की घटना होती है। जो मनुष्य पूर्ण है, जो शरीर के बारे में कभी कुछ नहीं सोचता, और जिसे कोई इच्छा नहीं है, वह फिर जन्म नहीं लेता। उसकी मृत्यु होने पर उसका सूक्ष्म शरीर, जिस ने आत्मा (सूर्य) को खूब पाल और सत्य (तेज) या प्रकाश को आत्म सात् किया है, विश्व में अपना स्थान खाली कर देता है, और विरल वायु की तरह इस दुनिया से ऊपर उठ जाता

है। उसका स्थान खाली होजाने से और उसका पुनर्जन्म न होने के कारण, एक दैवी-नियम के अनुसार उसके सब अत्यन्त नगीची उसके स्थान की पूर्ति के लिये ऊपर उठाये जाते हैं, और जो उनके बाद हैं वे भी इसी तरह एक दर्जा चढ़ जाते हैं, और इसी प्रकार समग्र दुनिया एक दर्जा चढ़ जाती है। इस प्रकार से दुनिया आप से आप गति पा जाती है। यह एक अपूर्व, अद्भुत सुधारक है। उसे अपने ओठ खोलने की आवश्यकता नहीं है, फिर भी दुनिया का उत्थान हो जाता है।

आर्कीमीडिस (Archimedes) ने कहा, "यदि मुझे खड़े होने को स्थल मिल जाय, तो दुनिया को सरका दूँ", दुनिया को हटाने के लिये स्थिर स्थिति–स्थल या आलंब पाने में वह विफल हुआ। वेदान्त कहता है कि वह स्थिर-बिन्दु तुम्हारे अन्दर है। वह है आत्मा। उसे पाओ और तुम समग्र संसार को सरका सकते हो।

मिथ्यात्मा के सम्बन्ध में कुछ शब्द; बर्तन के द्रव पदार्थ में सूर्य का प्रतिबिम्ब है। विज्ञान सिद्ध करता है और चक्षु सम्बन्धी विद्या स्पष्ट करती है कि यह प्रतिमा मिथ्या है। सम्पूर्ण प्रकाश बाहर है और द्रव-पदार्थ में (गोचर) प्रतिमा केवल लौटते हुए प्रकाश की छाया है। प्रतिमा हमारा ही अनुमान है, इन्द्रियों का भ्रम मात्र है; पानी या गिलास में ऐसी कोई वस्तु नहीं है। प्रतिमा भ्रम के सिवाय और कुछ नहीं है। अब, यह देखने मात्र प्रतिमा पानी या द्रव पदार्थ की गतियों से प्रभावित होती है, उसी मात्रा में यह भी संक्षुब्ध होती है जितना जल या द्रव पदार्थ संक्षुब्ध होता है।

कौन बालों को बढ़ाता, या रक्तको बहाता है? क्या इस मिथ्या, क्षुद्र, स्वत्व स्वाधीनकारी, अपना रंग जमाने वाले

'अहं' के ये काम हैं ? कदापि नहीं। यह क्षुद्र, उत्तरदायी कहा जाने वाला 'अहं', मस्तिष्क में विचार का प्रेरक नहीं है। इस मायामय 'अहं' से पीछा छुड़ाओ। अपने सच्चे आत्मा (स्वरूप) का अनुभव करो। तुम विश्व के स्वामी हो। तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, पवित्रों के पवित्र हो।

हम देखते हैं कि सुषप्ति-अवस्था में सूक्ष्म शरीर कुछ समय के लिये, मानो, घन अवस्था में लौट जाता है। रुधिर बहता है, भोजन पचता है, किन्तु "मैं पचा रहा हूँ" का कोई विचार नहीं है। स्वप्नावस्था में सूक्ष्म शरीर घन अवस्था को त्याग देता और द्रव रूप हो जाता है; सूर्य का प्रतिबिम्ब तब पड़ने लगता है और तुम फिर कहने लगते हो "मुझे उसकी इच्छा है, मैं यह करता हूँ"। वह स्वार्थी, ज़िम्मेदार, इच्छाकारी आत्मा, वह प्रतिमा, पुनः तुम्हारे पास है। यदि यह स्वार्थी व्यक्तित्व सत्य होता तो सदैव रहता। गाढ़ निद्रा अवस्था में वह क्यों नहीं रहा ? वह क्यों नहीं टिका ? वह गाढ़ निद्रा-अवस्था में नहीं रहा, यही तथ्य सिद्ध करता है कि आपका यह कीर्तिकामी 'अहं' एक भ्रम है। इससे ऊपर उठो। तुम सूर्यों के सूर्य हो, पूर्ण आनन्द हो, तत्स्वरूप हो, तुम वही हो, और कुछ नहीं।

सामान्य लोगों के लिये यही कठिनता है कि वे अपने को यह मिथ्या अहंकार, यह झूठी प्रतिमा समझते हैं। वे इसे नहीं छोड़ सकते। सारे गड़बड़ का यही कारण है।

पानी बहता है। उस में लहरें, तरंगें और हिलकोरे उठते हैं। किन्तु इन सब का कारण सूर्य का कर्म है, और जल में प्रतिबिम्बित होने वाली सूर्य की प्रतिमा का हाथ इसमें ज़रा भी नहीं है, बल्कि जल में सूर्य की प्रतिमा उतनी ही आन्दोलित और संक्षुब्ध होती है जिस मात्रा में जल में गड़बड़

होता है। ठीक इसी तरह सूक्ष्म शरीर जल के तुल्य है। सच्ची आत्मा की शक्ति के द्वारा यह संक्षुब्ध होगा, उस में लहरें आयेंगी, पर तथापि मिथ्याआत्मा (प्रतिमा) इस तरह उद्विग्न होता है मानो जल के सारे आन्दोलन का यही कारण है। जल में प्रतिच्छाया का अर्थ है, चित्त, शरीर, आदि से अभेदता स्थापित करना। यदि शरीर अस्वस्थ है तो तुम कहते हो, "मैं बेकाम होगया, मैं रोगी हूँ", क्योंकि तुम अपने आप को देह या मन से अभेद समझते हो। वेदान्त कहता है, यह मिथ्या अभेदता को त्याग दो और तुम ठीक हो जाओगे। शरीर या चित्त के किसी दोष से तुम्हें नहीं उद्विग्न होना चाहिये। इस झूठे आत्मा के कारण यह मिथ्या भावना ही तुम्हारी सब व्यथाओं का हेतु है।

**प्रश्न**—भौतिक शरीर में होते हुए क्या आत्मा अपने आपको पूर्णतया प्रत्यक्ष कर सकता है?

**उत्तर**—आत्मा शब्द का जैसा तुम अर्थ करोगे उस पर उत्तर निर्भर है। आत्मा से क्या प्रयोजन है? क्या मन आत्मा है? बर्कले (Berkeley), मिल (Mill), हैमिल्टन (Hamilton), रीड (Reid), सब के सब मन और आत्मा को एक करते हैं। इस अर्थ में आत्मा की उन्नति अनिश्चित है। यदि आत्मा शब्द से मतलब उसका यह है जिसे हमने मनुष्य में सत्यता की प्रतिमा कहा है, तो प्रश्न घटित नहीं होता। यदि आत्मा शब्द से सच्ची आत्मा अभीष्ट है, तो किसी परिवर्तन या उन्नति की संभावना के लिये कोई स्थान नहीं है। किन्तु साधारणतः अधिकांश लोगों के लिये आत्मा शब्द मिथ्या, कल्पना मात्र है, कोरा नाम है, जिसका कोई निर्दिष्ट महत्व (उपयोग) नहीं है। ये लोग इस मामले पर अपने मत आप ही स्थिर करते रहें।

# आत्मानुभव का मार्ग।

पाठक, आत्मा सम्बन्धी हरेक वाक्य और शब्द पर इस दर्जे तक ध्यान और एकाग्रता से मनन करना चाहिए कि मन असली आत्मा में उतर जाय, बल्कि उसमें लीन होजाय। ॐ का ध्यान करते समय नये अभ्यासी सौर नाड़ी ग्रंथि ( Solar plexus ) में अपनी शक्ति को केन्द्रित करें।

वेदान्तिक मानसिक एकाग्रता में मुख्य बात यह है कि हमें अपने सच्चे आत्मा को सूर्यों का सूर्य, प्रकाशों का प्रकाश अनुभव करना होता है। देह से परे, मन से परे, इस अवस्था में अपने को लाओ और प्रकाशों के प्रकाश, व सूर्यों के सूर्य में अपने को लीन करो, फिर आप देखेंगे कि सारा जगत आपके सामने विश्व-दृश्य के सदृश खुल जायगा, या मेघमाला की तरह उड़ जायगा, फिर हरेक वस्तु आप के सामने बड़े नम्र भाव से आवेगी।

यदि तकलीफ न हो, तो प्रातःकाल उठो और सूर्य के तभी दर्शन करो जब वह (horizon) क्षितिज के नीचे ही हो। सूर्य की कुमेरु-ज्योति (aurora) की ओर देखो और यह सुन्दर, जगमग अति प्रिय दृश्य मन को प्रोत्साहित करता है और किसी अंश तक ऊपर उठाता है, और जब मन कुछ उत्थान पा जाता है, किसी अंश तक ऊपर उठ जाता है, तो फिर यथेच्छ ऊँचे पर उसे उठा लेजाना, मान लीजिये, रमणीक पहाड़ों के सर्वोच्च शिखरों पर उसे चढ़ाना, आप के लिये सुगम होजाता है।

भारत में क्रीड़ा-भूमि में गुल्ली नामक एक खेल की वस्तु होती है, जो बीच में तो मोटी और दोनों सिरों पर खूब

नुकीली होती है। दोनों सिरे इसके ज़मीन से उठे रहते हैं, एक सिरे को हम एक डंडे से चोट मारते हैं और गुल्ली तुरन्त थोड़ा सा उछलती है, तब उसी डंडे से हम बड़े ज़ोर से उसमें दूसरी चोट मारते हैं और वह हवा में सन्नाती हुई बड़ी दूर जाकर गिरती है। इस खेल में दो काम हैं। एक तो गुल्ली को ज़मीन से उठाना और दूसरे उसे डंडे से मार कर दूर पहुँचाना। यदि मन को परमेश्वर से युक्त करना है, तो सबसे पहले उसे कुछ उठाना होगा, और दूसरा काम यह है कि उसे आध्यात्मिक आकाश मंडल में खूब दूर फेंका जाय।

प्रफुल्लित वायुमंडल, सुन्दर भूभाग, ( Landscapes ) और मनोहर दृश्य कभी कभी मन को प्रथम उत्थान देने में, प्रारम्भिक दशाओं में उसे ऊपर उठाने में बहुत सहायक होते हैं। तदुपरान्त मन को दौड़ाना, और जब तक सम्पूर्ण देहाध्यास त्याग कर वह ईश्वर और प्रभु मात्र न होजाय तब तक उसे उत्तरोत्तर आगे बढ़ाते रहना हमारे लिये यथेष्ट सरल हो जाता है। मन को पहली उठान देने में और उसे प्रारंम्भिक उत्थान प्रदान करने में अनुकूल काल और स्थान से प्राप्त होनेवाले अभिनिवेश (Inspiration) का उपयोग किया जा सकता है।

प्रभात का समय, पक्षियों का चहचहाना, सुगन्धित पवन, और पूर्वीय क्षितिज में दिखाई देने वाले अत्यन्त मनोहर और सुन्दर रंग मन को मौलिक उत्थान देते हैं।

मन को कैसे स्वर्गीय प्रदेशों में चढ़ाया जाय, आत्मा को परमेश्वर के सिंहासन तक कैसे उठाया जाय? उदय होनेवाले या अस्ताचलगामी सूर्य का उदार प्रकाश जब अधखुले नयनों की स्वच्छ पलकों पर पड़ता है, तब हम ॐ मंत्र जपना शुरू करते हैं; हम उसे भावना की भाषा में गाते हैं।

विभिन्न पुरुष ॐ अक्षर के विभिन्न अर्थ करते हैं। हरेक व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक उत्कर्ष की अवस्था विशेष में इस का वही अर्थ करता है जो उसके अत्यन्त अनुकूल होते हैं। कुछ लोग इस अक्षर ॐ को सूर्यों के सूर्य का स्थानीय ग्रहण करते हैं, और उदय होते हुए सूर्यमण्डल की ओर वे उसी तरह देखते हैं जिस तरह नारियां अपने दर्पणों की ओर देखती हैं। भारत में नारियां अपने अँगुठों में आइने (आरसी) पहनती हैं। उनकी चौकटें (आधार) सोने के बड़े मुँदरी-सरीखे घेरे होते हैं जिनमें शीशे जड़े होते हैं। वास्तव में, नारी को दर्पण (आरसी) की सी प्रिय कोई भी वस्तु नहीं होती। जब वह उसमें देखती है तो अपना मुखड़ा उसमें देखती है, मानो वह उससे बाहर है, किन्तु वह जानती और समझती है कि उसका मुखड़ा उसी के साथ है। वह कोई वस्तु बाहर देखती है किन्तु उसे विश्वास है कि वह वस्तु वह खुद ही है। इसी तरह एक वेदान्ती सूर्य की ओर देखता है मानो वह उससे बाहर है, किन्तु उसे विश्वास होता है और वह मान करता है कि उसका अपना आप ही वास्तव में सूर्य है, बाहरी, भौतिक सूर्य उसकी प्रतिमा, उसका प्रतिबिम्ब और उसकी प्रतिच्छाया मात्र है।

वेदान्ती सूर्य को अपना वैसा ही सम्बन्धी देखता है जैसा रिश्ता चन्द्रमा का सूर्य से है। चन्द्रमा अपने आप ही चमकता प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में, वैज्ञानिक दृष्टि से, वह अपनी संपूर्ण प्रभा के लिए सूर्य का ऋणी है। ऐसे ही वेदान्ती समझता और अनुभव करता है कि सूर्य, जो अपना प्रताप इस तरह प्रगट कर रहा है कि मानो वह उसी का है, वास्तव में अपनी सब चमक मेरे सच्चे आत्मा से ऋण लेता है और अपनी सारी महिमा के लिए मेरा ऋणी है।

पृथिवी घूमती है। किन्तु हम सोचते हैं कि सूर्य घूम रहा है। जब हम ज्योतिष पढ़ते हैं तब हमारा ज्ञान बढ़ता है और फिर हम धोखा नहीं खाते, और हमें निश्चय होजाता है कि सूर्य नहीं चक्कर काटता और पृथिवी की गति सूर्य के मत्थे मढ़ी जाती है। इसी प्रकार वेदान्ती जब उदय के समय सूर्यमंडल की ओर देखता है, तब वह समझता और अनुभव करता है कि जो कुछ महिमा, गौरव, और शक्ति प्रतापी सूर्य की प्रतीत होती हैं, वे भूल से सूर्य की मानी जाती हैं; वास्तव में वे मेरी, मेरी, मेरी हैं।

भौतिक जगत में सूर्य प्रकाश अर्थात् ज्ञान का चिन्ह है। सूर्य शक्ति का चिन्ह है। वह सब ग्रहों को चक्कर देता है। वह अस्तित्व का, जीवन का एक चिन्ह है। यावत् जीवन अपने मूल ( कारण ) के लिए सूर्य का ऋणी या कनौड़ा है। सूर्य सुन्दरता का चिन्ह है। वह इतना जगमगा है कि पृथिवी और सब वस्तुओं को आकर्षित करता है। अच्छा, सूर्य ज्ञान, प्रकाश, जीवन, शक्ति, अस्तित्व, सुन्दरता, आकर्षण का प्रतिपादक है। वेदान्ती अनुभव करता है कि ये सबगुण मेरे ही हैं। वेदान्ती समझता है कि ये सब गुण मेरे ही हैं, बल्कि मैं ही या मैं हूं। ये गुण और ये सब शक्ति प्रकाश, जीवन, इत्यादि उसी तरह मुझसे बाहर दिखाई पड़ते हैं जिस तरह एक सुन्दरी का मुखड़ा अपने से बाहर दर्पण में दिखाई पड़ता है। किन्तु वास्तव में,सचमुच, प्रकाश, जीवन, ज्ञान, शक्ति, आकर्षता और सब कुछ मैं हूँ।

इस कल्पना को अनुभव करने और अपने असली आत्मा में लीन होने के लिये, नवीन जिज्ञासु को ॐ अक्षर से बड़ी सहायता मिलती है। ॐ अक्षर जपते वा उच्चारते समय, वेदान्ती उसे इस अर्थका वाचक समझता है:—"मैं प्रकाशों

का प्रकाश हूँ, मैं सूर्य हूं। मैं असली सूर्य हूं। बाह्य सूर्य मेरा चिन्ह मात्र है। जिसके सामने सब ग्रह और मंडल चक्कर काटते हैं। मेरे लिये सब स्वर्गीय और मानवीय शरीर गतिमान हैं और सब कुछ करते हैं। मैं अचल और नित्य हूं; कल, आज, और सदा एकसा हूं। यह सम्पूर्ण भूगोल, यह समग्र विश्व, मेरे सामने अपनी तहें खोलता है। मुझे अपने सब भाग दिखलाने को, अपना सर्वस्व मुझे दिखलाने को वह चक्कर काटा करता है। अपने सब पहलू मेरे सामने खोल कर रखने को पृथिवी अपने धुरे (axis) पर घूमा करती है। विश्व मेरे लिए सब तरह के काम करता है। सूर्य मेरे लिए प्रकाश डालता है। चन्द्रमा मेरे लिये मेरे सामने चमकता है। मेरी उपस्थिति के कारण मेरे आदेश से, इस संसार में सब व्यापार होता है। जिस तरह सूर्य की उपस्थित ही वृक्षों को बढ़ाती है, पशुओं की पेशियों (पट्ठों) को गति देती है, या मनुष्यों से विचार करवाती है, उसी तरह मेरी मौजूदगी सब को जगाती है। मेरी, सच्ची आत्मा की, सच्चे परमेश्वर की उपस्थिति ही इस दुनिया में सब कुछ होने का कारण होती है। ये सब पिंड (नामरूप) लौकिक या पारलौकिक सब प्रकार के पदार्थ, ये सब प्राणी, अपनी आत्माओं और देवताओं के सहित, अपने अस्तित्व के लिये मेरे अधीन वा आश्रित हैं। वे मुझ सूर्यों के सूर्य में रहते हैं।"

प्रकाशों का प्रकाश मैं हूँ। स्वप्नों में हम पदार्थ देखते हैं, दीपक के प्रकाश से नहीं और न सूर्य या चन्द्रमा के ही प्रकाश से, फिर भी हम उसे देखते ज़रूर हैं, और जानते हैं कि बिना प्रकाश के हम उसे नहीं देख सकते थे। फिर किस प्रकाश में हम उसे देखते हैं? यह मेरे शुद्ध स्वरूप का

प्रकाश है, यह मेरे आत्मा का प्रकाश है। वह मेरा प्रकाश है जो स्वप्न में सब वस्तुओं को दिखला देता है। यदि मैं स्वप्न में एक हीरा देखूं, तो वह मेरे प्रकाश से दिखाई पड़ता है। हीरे की ज्योति भी मेरे प्रकाश के समुद्र में एक तरंग मात्र है। यदि मैं स्वप्न में चन्द्रमा देखता हूँ तो वह अपनी ज्योति के सहित मेरी प्रभा में वैसी ही एक लहर है। यदि मैं स्वप्न में सूर्य देखता हूं तो वह सूर्य, और उसका प्रकाश भी, मेरे तेजके समुद्र में एक भँवर मात्र है। जागृत अवस्था में भी यही दशा है। सूर्य, चन्द्रमा नक्षत्र और हरेक चीज़ मेरे प्रकाश के समुद्र में केवल लहरें हैं। मैं प्रकाशों का प्रकाश हूँ। मैं दुनिया का प्रकाश हूँ। मेरी मौजूदगी के महोदधि में हरेक पदार्थ—सूर्य, नक्षत्र देवता, सबकेसब तरंगों और चक्रों की तरह बर्ताव करते हैं।

"मैंने सूर्य को समुद्र से बाहर उठाया,
चन्द्र ने अपना परिवर्तनशील मार्ग मेरे साथ शुरू किया"

मैं बादशाहों का बादशाह हूँ। मैं ही इस दुनिया के रूप में प्रगट होता हूँ। विभिन्न बागों में सब मनोहर फूलों के रूप में मैं ही प्रगट होता हूँ। सब सुन्दरियों की मन मोहनी सूरतों के साथ मैं ही मुसकुराता हूँ। सब योद्धाओं की मांसपेशियों को मैं ही चलाता हूँ। मुझ में सारी दुनिया जीती, चलती-फिरती और अपना अस्तित्व रखती है। हर जगह मेरी ही मर्ज़ी का पालन हो रहा है। सब कहीं मेरे ही राज्य का परम शासन है। मैं सर्वत्र व्यक्त हूँ। सूक्ष्मतम महाक्षुद्र जन्तु से लगाकर बड़े से बड़े सूर्य तक का पोषण मैं करता हूँ। प्रत्येक भूत को उसका नित्यका आहार मैं पहुँचाता हूँ। मैं पृथिवी से सूर्य के चक्कर दिलवा रहा हूँ। 'दुनिया शुरू होने से पहले ही मैं था।

बुरे विचार और सांसारिक इच्छाओं का सरोकार झूठे शरीर और झूठे मन से है, और वे अंधकार की चीज़ें हैं मेरी मौजूदगी में उन्हें आने का कोई हक नहीं है। मैं परम आकाश हूँ जिसमें सब विश्व और सब भौतिक आकाश बहते जा रहे हैं। प्रत्येक परमाणु और प्रत्येक पदार्थ में प्रकाश का प्रवेश और परिव्याप्ति होना मुझे पसन्द है। मैं सब से नीचा हूँ, मैं सब से ऊँचा हूँ। मेरे लिये न कोई निम्नतम है, न उच्चतम। जहाँ कहीं मानवीय दृष्टि पड़ती है, वहाँ मैं हूँ। देखनेवाला मैं हूँ, दिखानेवाला मैं हूँ, कर्त्ता मैं हूँ। ईसा में मैं प्रगट हुआ। मोहम्मद में मैंने अपने को व्यक्त किया। दुनिया में अत्यन्त नामी लोग मैं हूँ; अत्यन्त बदनाम, अपमानित, अत्यन्त पतित मैं हूँ। मैं सर्व हूँ, सर्व। तुम्हारी इच्छा की वस्तु कोई भी हो, वह मैं हूँ। अरे, मैं कितना सुन्दर हूँ! बिजली में मैं कौंधता हूँ, मेघों के नाद में मैं गरजता हूँ, पत्तियों में मैं फड़फड़ाता हूँ, पवनों में मैं फुफकारता हूँ, तरंगाकुल समुद्रों में मैं लुढ़कता हूँ। मित्र मैं हूँ, शत्रु मैं हूँ। मेरे लिये न कोई शत्रु है, न मित्र है। दूर हो, तुम ऐ विचारो, तुम कामनाओं! जिनका सरोकार इस दुनिया की अनित्य, अस्थायी कीर्ति या दौलत से है। इससे इस देह की कुछ भी दशा हो, मेरा इससे कोई सम्पर्क नहीं। सब शरीर मेरे हैं। फ्रांकलिन (Franklin) मैं था, निउटन (Newton) मैं हो चुका हूँ। लार्ड केलविन (Lord Kelvin) मैं हूँ, शक्तिशाली राम और सुन्दर कृष्ण मैं हूँ। कांट (Kant) के दिमाग में जिसने काम किया वह मैं ही हूँ। बुद्ध और यशस्वी शंकर के चित्तों को मैं ही ने प्रेरित किया। सब शेक्सपियरों (Shakespeares) और अफलातूनों (Platos) को मैं प्रकाश उधार देता हूं। वे मुझ आदिस्रोत के पास

आते हैं, और वे परिपूर्ण हो, प्रभा और चमक पाते हैं। ये सब सांसारिक आकांक्षायें असली मनुष्य को बांधती और घसीटती हैं। तुम ऐ प्रफुल्लित भूभागों ( landscapes ) और गुलाब के बागो ! दूर हो। तुम सब के सब मुझ में हो। तुम में से एक भी मुझे नहीं धारण कर सकता। यह विश्व मुझ में है। हरेक वस्तु मुझ में है। मुझे कौन धारण कर सकता है ? मैं कैसे परिमित हो सकता हूँ ? संसार, संसार मुझ में है। विश्व, विश्व मुझ में है। और फिर भी मैं हरेक में और सब में हूँ। मैं हरेक के और सब के मनों और विचारों में हूँ। मैं प्रेमी के धड़कते सीने में हूँ, मैं अभिमानी प्यारे के हँसते नेत्रों में हूँ। मैं हरेक और सबकी नाड़ियों में चलता हूँ। मैं तुममें हूँ, मैं तुम में हूँ। बल्कि, कोई तुम और मैं हो ही नहीं सकते, कोई भेद नहीं है, मैं हूँ मैं।

मैं अदृश्य आत्मा हूँ जो प्रबुद्ध करता है
सब सूक्ष्म तत्त्वों को, मैं अग्नि में प्रज्वलित होता हूँ,
मैं सूर्य और चन्द्र में, ग्रहों और नक्षत्रों में, चमकता हूँ,
मैं पवन के साथ उड़ता हूँ, लहरों के साथ लुढ़कता हूँ,
मैं हूँ नर और नारी, किशोर और कुमारी,
नवजात शिशु, म्लान प्राचीन, अपने डंडे पर आश्रित,
जो कुछ है वह मैं हूँ,
श्याम मधुकर और चीता, मछली,
लाल आँखों वाला हरा पक्षी, वृक्ष, घास,
मेघ जो अपने गर्भ में चपलता रखता है।
ऋतुएँ और समुद्र, वे मुझ में हैं,
मुझ में आरम्भ करते और समाप्त होते हैं।

उपनिषद् ( अनुवाद, सर एडविन अरनल्ड )।

I am the unseen Spirit which informs
All subtle essence ! I flame in fire,
I shine in sun and moon, planets and stars !
I blow with the winds, roll with the waves !
I am the man and woman, youth and maid !
The babe new born, the withered ancient, propped
Upon his staff ! I am whatever is—
The black bee and the tiger and the fish,
The green bird with red eyes, the tree, the grass,
The cloud that hath the lightning in its womb.
The seasons and the seas ! In Me they are,
In Me, begin and end.

(Upanished—Sir Edwin Arnold, Translator),

I hide in the solar glory,
I am dumb in the pealing song,
I rest on the pitch of the torrent,
In slumber I am strong.

I wrote the past in characters
Of rock and fire the scroll,
The building in the coral sea
The planting of the coal.

Time and thought were my surveyors
They laid their courses well,
They poured the sea, and baked the layers
Of granite, marl, and shell. (Emerson).

———o———

I am the mote in the sun beam, and I am the burning sun,

सूर्य की प्रभा में मैं लुकता हूँ,
मैं मूक हूँ घनवनाते गान में,
मैं धारा के गिराव पर आराम करता हूँ,
निद्रा में मैं प्रवल हूँ।

मैं ने चट्टानों और अग्नि रूप अक्षरों से
समुद्र में मूंगे के महल बनाकर
और प्राचीन वनस्पति से कोयले की
खानें रचकर, सृष्टि के
गत इतिहास को लिपि बद्ध किया।

काल और ख्याल मेरी नाप जोख करने वाले थे।
उन्होंने अपने मार्ग अच्छे बनाये।
उन्हों ने समुद्र उडेला और
पत्थर, चिकनी मट्टी और सीप की तहों को पकाया

(इमर्सन)

मैं हूँ अणुरेणु सूर्य-किरण में, और मैं हूँ प्रचंड सूर्य,
"यहाँ विश्राम करो!" मैं परमाणु से कानाफूसी करता हूँ, मैं सूर्य मंडल को पुकारता हूँ, कि तुम "लुढ़कते रहो"।
मैं प्रभात की लालिमा हूँ, और मैं हूँ सांध्य-पवन;
मैं हूँ पत्ती की क्षीण झरझर, विकट समुद्रों की उमड़।
मैं हूँ जाल, चिड़ीमार, चिड़िया और उसकी भयभीत चीख;
दर्पण, प्रतिबिम्बित रूप; ध्वनि और उसकी प्रतिध्वनि मैं हूँ;
प्रेमी की आवेशपूर्ण विनय-प्रार्थना, कुमारी का कर्णोवाद भय;
योद्धा, (शस्त्रका) फल जो उसे काटता है, उसकी माता के
तड़पते हृदय का आंसू, मैं हूं।

"Rest here! I whisper the atom, I call to the orb, "Roll on."
I am the blush of the morning, and I am the evening breeze;
I am the leaf's low murmur, the swell of the terrible seas.
I am the net, the fowler, the bird and its frightened cry;
The mirror, the form reflected; the sound and its echo I;
The lover's passionate pleading, the maiden's whispered fear;
The warrior, the blade that smites him, his mother's heart-wrung tear.
I am intoxication, grapes, wine-press, and musk and wine,
The guest, the host, the traveller, the goblet of crystal fine.
I am the breath of the flute, I am the mind of man;
Gold's glitter, the light of the diamond, the sea pearl's lustre wan.
The rose, her poet nightingale, the songs from the throat that rise;
The flint, the sparks, the taper, the moth that about it flies.
I am both good and evil, the deed and the deed's intent;
Temptation, victim, sinner, crime, pardon and punishment.

मैं हूँ नशा, अंगूर, अंगूर का निष्कर्षक, और कस्तूरी तथा मद्य,
अतिथि, मेज़मान, मुसाफिर, अत्युत्तम स्फटिक का प्याला।
मैं हूँ मुरली की तान (श्वास), मैं हूँ मनुष्य का मन ;
सोने की दमक, हीरे की चमक, समुद्र के मोती की पीली प्रभा।
गुलाब, उसकी कवि बुलबुल, गीत जो गले से निकलते हैं ;
चकमक पत्थर, चिनगारियाँ, बत्ती, उस पर उड़ने वाला
पतिंगा मैं हूं।
पुण्य और पाप दोनों मैं हूँ, कार्य और कार्य का अभिप्राय ;
प्रलोभन, बलि, पापी, पाप, क्षमा और दण्ड।
मैं हूँ जो कुछ था, है, होगा—सृष्टि का उत्थान और पतन ;
शृंखला, अस्तित्व की लड़ी, सब का आदि और अन्त मैं हूं।

देखो! वन के वृक्ष मेरे निकट कुटुम्बी हैं,
और शिलाएँ सजीव हैं उससे जो मुझ में धड़कता है ;
मट्टी मेरा माँस है, और लोमड़ी मेरा चर्म,
डाँस में मैं तीक्ष्णता हूँ, और मधुमक्खी में मिठास।
फूल मेरे प्रेम के विकास के सिवाय और कुछ नहीं हैं,
और जल मेरे स्वप्न के स्वर में प्रधावित होता है।
सूर्य मेरा ऊपर लटका हुआ फूल है,
मैं बिजली में कौंधता हूँ, बाज की चीख (हूँ)।
मैं मर नहीं सकता, मृत्यु चाहे सदा
मेरे ताने में बाना बुनती रहे,
मैं कभी जन्मा नहीं था, तथापि मेरे श्वास के जन्म उतने ही
अधिक हैं जितनी निद्रा रहित सागर में लहरें।
मेरी सांस फूलों को सुगन्धित बनाती है,
मेरी नेत्रों की किरणें सूर्य के उज्वल प्रकाश का हेतु हैं।
सूर्यास्त प्रतिबिम्बित करता है मेरे गुलाबी गालोंकी लालियोंको,

I am what was, is, will be—creation's ascent and fall;
The link, the chain of existence, beginning and end of all.



Lo! the trees of the wood are my next of kin,
And the rocks alive with what beats in me;
The clay is my flesh, and the fox my skin,.
I am fierce with the gadfly, and sweet with the bee.
The flower is naught but the bloom of my love,
And the waters run down in the tune I dream.
The sun is my flower uphung above,
I flash with the lightning, with falcons scream.
I cannot die though forever death.
Weave back and fro in the warp of me,
I was never born, yet my births of breath.
Are as many as waves on the sleepless sea.
My breath doth make the flowers fragrant,
My eyebeams cause the sun's bright light.
The sunset mirrors my cheek's rose blushes,
My aching love holds stars so tight.
Sweet streams and rivers my veins and arteries,
My beauteous hair the fresh green trees.
What giant strength! my bones are mountains.
O, joy! the fairy world my bride.
Nay, talk no difference, wonder of wonders,
Myself the bridegroom, I the bride.



Roll on, ye suns and stars, roll on
Ye motes in dazzling light of lights.

मेरा पीड़ित-प्रेम नक्षत्रों को इतना ज़ोर से पकड़ता है।
मधुर-धाराएं और नदियाँ मेरी धमनियां और रुधिरबहावनी
नाड़ियां ( हैं ),
मेरे सुन्दर केश ताज़ा हरे वृक्ष ( हैं )।
कैसी प्रबल शक्ति ! मेरी हड्डियाँ भूधर ( पर्वत ) हैं,
वाह रे सुख ! सुन्दरी दुनिया मेरी दुलहिन ( है )।
नहीं, किसी भेद की चर्चा मत करो, आश्चर्यों का आश्चर्य
मैं खुद दूल्हा और मैं ही दुलहिन हूं।

बढ़े चलो, तुम सूर्यों और नक्षत्रों, बढ़े चलो
प्रकाशों के जगमग प्रकाश में ऐ तुम अणुओं !
और ऐ सूर्यों के सूर्य ! मुझमें बढ़े चलो।
ए, ग्रह-मंडलों और भूगोलों ! तुम जो भँवर की लहरें मात्र हो
मुझ में ऐ कल्लोलाकुल विस्तृत सागर !
उठो और गिरो, लहराओ, बढ़े चलो।
ऐ लोकों, मेरे ग्रहों, तकुआ ! चक्कर लगाओ,
सब अपने अंग और पहलू मेरे सामने खोलो,
और नाचते हुए जीवन के प्रकाश में घाम खाओ।
सूर्यों और नक्षत्रों या पृथ्वियों और समुद्रों।
चक्कर काटो, मेरे स्वप्न की प्रतिच्छायाओं।
मैं हरकत करता हूँ, मैं फिरता हूँ, मैं आता हूँ, मैं जाता हूँ।
गति, गतिमान् और गतिकारी मैं हूं।
न विश्राम, न गति मेरी या तेरी।
कोई शब्द मेरा कभी भी वर्णन नहीं कर सकते।

चमको, चमको छोटे सितारो;
चमकते हुए, पलक मारते हुए, संकेत करो, मुझे बुलाओ।
उत्तर दो, पहले, ऐ सुन्दर नक्षत्रों !
क्यों तुम मुझे सनकारते और बुलाते हो ?

In Me, the sun of suns, roll on.
O, orbs, and globes mere eddies, waves
In Me the surging oceans wide
Do rise and fall, vibrate, roll on.
O world, my planets, spindle turn,
Expose me all your parts and sides,
And dancing bask in light of life.
Do suns and stars or earths and seas
Revolve, the shadows of my dream?
I move, I turn, I come, I go.
The motion, moved and mover I,
No rest, no motion, mine or thine.
No words can ever me describe



Twinkle, twinkle, little stars
Twinkling, winking, beckon, call me.
Answer, first, O lovely stars,
Whither do you sign and call me?
I'm the sparkle in your eyes,
I'm the life that in you lies

"Break, break, break
At the foot of thy crags, O sea!"
Break, break, break
At my feet, O world that be.
O suns and storms, O earthquakes, wars,
Hail, welcome, come, try all your force on me!
Ye nice torpedoes, fire! my playthings, crack!
O shooting stars, my arrows, fly!

तुह्मारे नेत्रों में मैं दमक हूँ,
मैं ही वह जीवन हूँ जो तुममें है।

"भंग हो, भंग हो, भंग हो!
अपने कगारों के चरणों पै ऐ, समुद्र!"
भंग हो, भंग हो, भंग हो
मेरे चरणों में, ऐ जगत्! जो भी हो।
ऐ सूर्यों और तूफानों! ऐ भूकम्पों, समरों, !
ओलों की वर्षा! स्वागत, आओ, अपनी सब ताकत मुझ पर आज़माओ!
तुम सुन्दर पनडुब्बी नौकाओं! गोली चलाओ; मेरे खेल की चीज़ों! दरको!
ऐ टूटने वाले तारों, मेरे तीरों! छूटो
तू प्रज्वलित अग्नि! क्या तू जला सकती है?
ऐ डराने वाली! तू मुझसे ही प्रज्वलित होती है;
ओ तू लपलपाती तलवार!, ऐ तू तोप के गोले,
मेरी शक्ति तुझे वेग से चलाती है।
विसर्जित देह पवन को उत्सर्ग कर दी गई है;
अनन्तता खूब ही मेरा मन्दिर बनी हुई है।
सब कान, मेरे कान; सब नेत्र, मेरे नेत्र;
सब हाथ, मेरे हाथ; सब मन मेरा मन।
मैं मृत्यु को निगल गया, सब भेद मैं पी गया;
कितना मधुर और बलिष्ट भोजन मैं पाता हूँ।
न डर, न शोक, न लालसी पीड़ा;
सब, सब हर्ष, या सूर्य या मेंह (वर्षा)।
अन्धकार, अविद्या, काँपे और तर्कश में चले गये,
थर्रांये, चूर चूर हुए, सदा के लिए लुप्त हो गये;
मेरे चौंधियाने वाले प्रकाश ने उसे भूना और झुलसा,
अमिट हर्ष! जय! जय! जय!!

राम।

You burning fire! Can you consume?
O threatening one, you flame from Me;
You flaming sword, ye cannon-ball,
My energy headlong drives forth thee!
The body dissolved is cast to winds;
Well doth infinity Me, enshrine!
All ears, my ears; all eyes, my eyes;
All hands, my hands; all minds, my mind!
I swallowed up Death, all difference I drank up;
How sweet and strong a food I find;
No fear, no grief no hankering pain;
All, all delight, or sun or rain!
Ignorance, darkness, quaked and quivered,
Trembled, shivered, vanished for ever;
My dazzling light did parch and scorch it,
Joy ineffable! Hurrah! Hurrah!! Hurrah!!!



# आत्मानुभव पर साधारण वार्तालाप।

गोल्डेन गेट हाल, सैन फ्रांसिस्को, जनवरी १८ सन् १९०३।

[ "आत्मानुभव की विधि" पर पिछला व्याख्यान, जो अमेरिका में पुस्तिकाकार छापा गया था, और उस पर पाठकों ने जो शंकाएँ उठाई थीं उनका विवेचन निम्नस्थ बात चीतों में है। ]

इस छोटी सी पुस्तिका में ध्यान की जो विधि बताई गई है उस, पर कुछ आपत्तियों पर हम विचार करेंगे। आप सज्जनों में अधिकांश ने इस पुस्तिका को पढ़ा है और उसी पर की गई आपत्तियों में से कुछ पर हम विचार करेंगे।

पहली शंका—अनुभव का जो तरीका आप हमें बताते हैं वह काल्पनिक है। किसी अन्य बात की अपेक्षा कल्पना और ख्याल के शिक्षण से उसका अधिक सम्पर्क है।

यह आपत्ति करने वालों को वेदान्त यों उत्तर देता है:—

प्यारे आत्मन्! ज़रा विचारो। प्यारे स्वरूपो! ज़रा सोचो तो। इस सारी दुनियां और इस दुनियां के सारे शरीरों का कारण कल्पना के सिवाय और कुछ भी नहीं है। तुम्हारी कुकल्पना और विचार—धारा की मार्ग-भ्रष्टता ही तुम्हारे सब रंजों, तुम्हारे क्लेशों, तुम्हारी चिंताओं, तुम्हारी कठिनाइयों और तुम्हारी पीड़ा का कारण है। कुकल्पना और भ्रान्त मार्ग में ख्यालों की धारा ही तुम्हें बांधती है, और सीधे ढर्रे पर लगाई हुई कल्पना ही तुम्हें मुक्त करती है। जैसे की तैसे दवा है (कांटे से कांटा निकलता है।)

जिस सीढ़ी से तुम गिरे, उदाहरण के लिये; वही सीढ़ी तुम्हें ऊपर ले जायगी। उसी सड़क से तुम्हें पीछे लौटना पड़ेगा जिससे चलकर तुम बदनसीबी और चिन्ता में पड़े। मुक्ति के

लिए वेदान्त जिस प्रकार की कल्पना की सिफारिश करता है, वह ठीक उसी तरह की कल्पना की उलटी है कि जिसने तुम्हें नीचे गिराया। इस तरह 'विपरीत विपरीत को चंगा करता है' (विष की दवा विष है) की विधि से तुम अवश्य रोग मुक्त हो जाओगे।

वेदान्त सिद्ध करता है कि यह अखिल संसार तुम्हारे संकल्पों के सिवाय और कुछ भी नहीं है, तुम्हारे अपने ही संकल्प और ख्याल के सिवाय और कुछ नहीं है। अब इस खयाल को विशुद्ध बनाओ, इस ख्याल को उन्नत करो, इसे ठीक रास्ते पर लगाओ, फिर तुम प्रकाशों के प्रकाश, सम्पूर्ण विश्व में सर्व रूप हो जाओगे।

एक आदमी को पेचिश हो जाती है। वैद्य उसे पेट साफ करने की दवा देता है और वह चंगा हो जाता है। पेचिश के कारण उसे बार बार पाखाने जाना पड़ता था। अपनी इच्छा से खाई हुई रेचक औषधि भी वही काम करती है, किन्तु दोनों में आकाश पाताल का अन्तर है। विरेचन तो औषधि है और पेचिश बीमारी है। यद्यपि दोनों का काम एक सा है किन्तु उनमें अन्तर बहुत बड़ा है। संसारिक संकल्प वा ख्याल तुम्हें गुलाम बनाता है. वह एक रोग है, वह तुम्हें बांधता है और सब प्रकार की परिस्थितियों की करुणा का तुम्हें भिखारी रखता है, हरेक पतन और तूफान तुम्हें अस्तव्यस्त कर सकता है। मानवी संकल्प ही कल्पना की पेचिश है। उस विरेचन का प्रयोग करो जो वेदान्त देता है। यह भी एक तरह की कल्पना समझी जाती है। दुनियां के ख्याल मात्र ऐसे ही हैं। किन्तु लौकिक ख्याल और मानावेय संकल्प पेचिश हैं, और वेदान्त जिस प्रकार की कल्पना या ख्याल की वकालत करता है वह विरेचन है। इस विरेचन का सेवन

करो और तुम्हारा रोग, तुम्हारी बीमारी दूर हो जायगी, सब तरह की पीड़ा, चिन्ता और क्लेश से छूट जाओगे।

भारतवर्ष में लोग साबुन से नहीं, राख से हाथ धोते हैं। राख एक तरह की गंदगी है, एक प्रकार की मट्टी है, और पाखाना पेशाब जिस से तुम्हारा हाथ मैला हुआ है वह भी मट्टी या कूड़ा है। इस में भी जब राख हाथों में लगाई जाती है और हाथ पानी से धो डाले जाते हैं, तो केवल हाथ की गंदगी ही नहीं छूट जाती, राख खुद भी छूट जाती है।

इसी तरह, जिस ख्याल को तुम्हें मनन करना पड़ेगा, उस प्रकार की कल्पना, जिसका वेदान्त उपदेश करता है, राख के तुल्य है। तुम्हारी हरेक दुर्बलता और मलिनता को वह माँज कर स्वच्छ कर देगा, वह तुम्हें उस प्रकार की कल्पना से ऊपर उठा देगा जिसकी इस में शिक्षा दी गई है।

एक मनुष्य स्वप्न देखता है, सब तरह की चीज़ें उसे स्वप्न में दिखाई पड़ती हैं। स्वप्न की चीज़ें कोरी कल्पनायें, केवल ख्याल, संकल्प मात्र हैं। मान लो वह स्वप्न में सिंह, चीता या सर्प देखता है। आप जानते हैं ऐसे अवसरों पर क्या होता है? जब कोई मनुष्य चीता, सिंह, या सर्प देखता है, तब वह तुरन्त चौंक उठता है और जाग जाता है। चीता एक प्रकार का बुरा स्वप्न कुस्वप्न (nightmare) है और उसे जगा देता है। यद्यपि स्वप्न का यह चीता या सिंह, तुम्हारी ही कल्पना की एक सृष्टि है, किन्तु तुम्हारे स्वप्न की यह वस्तु एक विचित्र कल्पना है, अद्भुत ख्याल है। स्वप्न में अन्य सब विचारों को हर लेता है, दूसरे सब स्वप्न-पदार्थों को यह हर लेता है। रमणीक दृश्य, मनोहर भूभाग (Landscapes), बहती नदियां, विशाल भूधरा (mountains), जिनका तुम स्वप्न देख रहे थे, सब के सब

स्वप्न में चीता या सिंह देखने के बाद चल दिये। चीता या सिंह घास या पत्थर कभी नहीं खाता। किन्तु तुम्हारे स्वप्न का चीता एक विलक्षण वस्तु है, क्योंकि सब भूभागों, वनों, जंगलों को वह भच्छ गया। सब चल बसे, स्वप्न द्रष्टा को उसने उद्विग्न कर दिया, और साथ ही अपने को भी खा गया, तुम्हारे जागने पर वह नहीं दिखाई देता।

इसी तरह, इस पुस्तक में जिस तरह के संकल्पों या कल्पना की शिक्षा दीगई है वह स्वप्न के चीते के समान है। समग्र संसार एक स्वप्न है। यह चीता तुम्हें सब झूठी कल्पना और अविद्या से छुटा देगा, और साथ ही खुद अपने से भी तुम्हारा पिंड छुटा देगा। यह तुम्हें वहां ले जायगा जहां सर्व प्रकार की कल्पना रुक जाती है, जहां सब प्रकार की भाषा रुक जाती है, यह तुम्हें ऐसी अवर्णनीय सत्यता में जाकर उतार देगा।

दूसरी शंका--यदि हम चेतनघन की ऐसी दशा में पहुँच जाते हैं जहां सब परिच्छिन्न चेतना रुक जाती है, जहां सब चिन्ता रुक जाती है, तो क्या वह शून्यता या रिक्तता की दशा नहीं है, क्या अचैत्यनता (बे होशी) की अवस्था नहीं है ? अचेतना की दशा में प्रवेश करने के लिए इतनी तकलीफ उठाने से क्या लाभ ? हमें वह न चाहिए।

इस आपत्ति पर वेदान्त का उत्तर है, "भाई, नहीं। मेरे अपने आप ! ज़रा सोचो, जल्दी न करो। अनुभव की इस दशा और मूर्छा गश की दशा में बहुत बड़ा अन्तर है। एक दोनों में सामान्य है, दोनों दशाओं में सारी विचार शक्ति रुक जाती है। मूर्छा में कोई विचार नहीं रहता, और आत्मानुभव या समाधि की दशा में भी कोई विचार नहीं रहता। तथापि उन में आकाश पाताल का भेद है।"

मूर्छा में मनने विचार करना वन्द किया, और विचार की यह वन्दी अति अकर्मण्यता का कारण हुई, और अकर्मण्यता की इस अति के द्वारा मूर्छा की उत्पत्ति हुई थी। मूर्छा में कर्मण्यता के अभाव से विचार रुकता है, मूर्छा मृत्यु के समान है। किन्तु समाधि या आत्म-साक्षात्कार की अवस्था पूर्ण उद्योग, पूर्ण-शक्ति, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द है।

आप जानते हैं कि प्रकाश के अभाव को अंधकार कहते हैं। यदि हम ऐसे कमरे में घुसें, जिस में वहुत कम रोशनी हो, तो हमें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। प्रकाश का अलौकिक वाहुल्य भी मनुष्य के नेत्रों के लिए व्यवहार में अन्धकार है। दोपहर के झलझलाते सूर्य की ओर क्या तुम देख सकते हो? सूर्य्य में आज जितना प्रकाश है उससे वहुत अधिक यदि होता, यदि वह दसगुना होता, तो कोई मनुष्य न देख सकता। विज्ञान हमें प्रकाश के शुवस्थ होने के चमत्कार की वात वताता है। प्रकाश की दो किरणें जहाँ विरुद्ध दिशाओं में होती हैं, वहाँ मनुष्य के नेत्रों को सुझाई नहीं पड़ता, वहाँ अन्धकार होता है। प्रकाश की अति भी मानव नेत्रों के लिए अन्धकार है, और प्रकाश का अभाव या कमी भी मनुष्य के नेत्रों के लिए अन्धकार है। प्रकाश-अभाव-मूलक अंधकार एक वस्तु है और अति प्रकाश मूलक अंधकार दूसरी वस्तु है।

इसी तरह, आत्मानुभव की दशा से ख्याल की क्रिया का रुकना मूर्छा या गाढ़निद्रा में ख्याल की क्रिया रुकने के विपरीत है। दोनों के परवर्ती प्रभावों में हम भेद लखते हैं।

एक मनुष्य मिरगी से पीड़ित है, जिस समय उस (मनुष्य) पर मिरगी आ चुकती है उसके वाद वह मनुष्य दुर्वल, अशक्त, मर चुका सा और क्षीण हुआ होता है, पर जब-

वह मिरगी के वश में होता है तब वह बेहोश होता है।

दूसरा मनुष्य आत्मानुभव या एकाग्रता की इस अवस्था में प्रवेश करता है, और उतने समय के लिए उसकी सम्पूर्ण मानसिक चेष्टा मानो रुक गई होती है। और इस अवस्था में ख्याल की क्रिया का रुक जाना मिरगी से आक्रान्त मनुष्य की ख्याल-क्रिया रुक जाने के समान है। किन्तु भेद पर ध्यान दीजिए। मिरगी वाला आदमी अशक्त, दुर्बल, बाद को बेकाम हो जाता है, और आत्मानुभव की अवस्था के उन कमनीय पहाड़ों से उतरने के बाद, परमानन्द की वह दशा छोड़ने के बाद, मनुष्य उद्योग से परिपूर्ण, शक्ति से परिपूर्ण, आनन्द से परिपूर्ण, और ज्ञान से परिपूर्ण होता है, वह दूसरों को नीरोग और बलवान कर सकता है, वह दूसरों को उठा सकता और उन्नत कर सकता है, और स्वयं दुर्बल या अशक्त होने से कहीं परे होता है। अब आप देखते हैं कि वेदान्तिक अनुभव में ख्याल की क्रिया का रुकना मूर्छा या नशे की हालत में विचार-क्रिया के रुकने का बिलकुल दूसरा सिरा है।

तीसरी शंका—हम कहते हैं कि हमें जीवन चाहिए, हमें जीवन चाहिए, हम अकर्मण्यता नहीं चाहते।

वेदान्त कहता है, "निश्चेष्ट मत हो, इच्छा करते जाओ, मत रुको"। सत्य बड़ा ही विरोधाभासी है। दोनों पहलुओं का विचार करना चाहिए। जो समझते हैं कि वेदान्त निराशावाद की शिक्षा देता है, वे भ्रान्त हैं। वेदान्त तुम्हें अपने आपके संचालन के इस तरह के सीधे मार्ग की शिक्षा देता है कि जिससे सारा संसार तुम्हारे क़ाबू में रहे।

हम इच्छा के प्रश्न पर विचार करेंगे।

वेदान्त का यह अभिप्राय नहीं है कि आप अकर्मण्यता का जीवन बितावें। कभी नहीं, सदा कर्ममय जीवन ( वेदान्त

सिखलाता है )। वेदान्त के अनुसार किसी में इच्छाओं का होना बहुत ठीक है। किन्तु हमें उनका उचित उपयोग करना चाहिये। इच्छा क्या वस्तु है ? कामना प्रेम के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। साधारणतः 'प्रेम' शब्द का अर्थ किसी पदार्थ के लिए 'उत्कट इच्छा' होता है । यदि 'प्रेम' किसी वस्तु के लिए उत्कट इच्छा है तो फिर सर्व प्रकार की इच्छा प्रेम के सिवाय और कुछ नहीं है । और कहा जाता है कि ईश्वर प्रेम है, अतः सब इच्छाएँ प्रेम हैं । यह सत्य होने से, वह मनुष्य कितना सुखी है जो यावत् इच्छा से अपने जीवन की अनन्यता अनुभव करता है और तब भान करता है कि वह खुद, उसकी अपनी सच्ची आत्मा, इच्छा के रूप में सारे जगत में समाई हुई है, और उसका शासन तथा नियंत्रण कर रही है। वह मनुष्य कितना सुखी हो जाता है जो इच्छा की सर्व-शासक शक्ति से अपनी एकता अनुभव करता है, जो समझता है कि "सम्पूर्ण इच्छा का स्रोत मैं हूँ" "सर्व-इच्छा का हेतु मैं हूँ "। "जनक, मूल, मुख्य स्रोत, इस जगत में सम्पूर्ण इच्छा का सारांश मैं हूँ; और इस तरह पर इच्छा की लगामों से सम्पूर्ण लोक का शासन करता हूँ। लगामें मेरे हाथों में हैं, मैं वह हूँ जो इन लगामों को पकड़े हुए है और इन देहों का शासन करता है "। ज्यों ही तुम इस नुक्ते (अंश ) पर पहुँचते हो, त्यों ही सब विद्वेष, सारा वैर समाप्त हो जाता है। मित्रों या शत्रुओं की इच्छाएँ मेरी इच्छाएँ हैं। मैं वह अनन्त शक्ति हूँ जो उन इच्छाओं का शासन या नियंत्रण करती है। इस या उस मनुष्य की उत्कट अभिलाषाएँ और याचनाएँ मेरी हैं । अरे मैं सुखी, सच्ची आत्मा, समग्र विश्व का शासक हूँ ।

लोग इच्छाओं का दुरुपयोग करते हैं। वे वस्तुओं को

उलट-पुलट देते हैं। यदि इच्छा प्रेम है और प्रेम परमेश्वर है, तो वेदान्त चाहता है कि तुम अनुभव करो कि तुम सम्पूर्ण इच्छा हो, किन्तु उसका दुरुपयोग न करो। एक इच्छा को तो अपनी और दूसरी सब इच्छाओं को किसी दूसरे की कहने की ग़लती मत करो। इच्छाएँ तब वाहियात हैं जब एक दूसरी का विरोधाचार करती हैं। सब इच्छाएँ प्रेम के सागर में तरंगों, लहरों, भँवरों के समान हैं। समग्र विश्व प्रेम के एक अनन्त समुद्र का बना हुआ है, जिसे तुम प्रेम कह सकते हो। तारागण गुरुत्वाकर्षण से एक साथ रुके हुए हैं। गुरुत्वाकर्षण खिंचाव है, और यह खिंचाव प्रेम है। सब रासायनिक संयोग (Chemical-Combinations) रासायनिक प्रीति वा संसर्ग (Chemical affinity) की शक्ति से घटित होते हैं। यह है परमाणु का परमाणु में प्रेम। परमाणु का परमाणु से प्रेम बन्धुता (affinity) कहलाती है। दो पौधों के प्रेम को गुरुत्वाकर्षण (gravitation) कहते हैं। अणुओं के पारस्परिक प्रेम को बन्धुत्व (affinity) कहते हैं। यह पुस्तक संसक्ति (cohesion) के प्रेम से एक साथ लगी हुई है। संसक्ति प्रेम है।

सम्पूर्ण संसार एक प्रेम-महासागर में तरंगों और लहरों के तुल्य है। और विज्ञान ने प्रगट किया है, लार्ड केल्विन (Lord kelvin) तथा दूसरों ने प्रतिपादित किया है कि "यावत् पदार्थ शक्ति के सिवाय और कुछ नहीं है"। अब, इस संसार में शक्ति मुख्यतः आकर्षण, संसक्ति, रासायनिक बन्धुत्व, बिजली, चुम्बकत्व, प्रकाश, ताप इत्यादि के रूप में व्यक्त होती है।

चुम्बकत्व और बिजली में क्या है? तुम (उनमें) आकर्षण पाते हो। देखने में ताप विलगकारी, ज़र्रों को जुदा

करने वाला जान पड़ता है। किन्तु पदार्थ की ओर दूसरी दृष्टि से देख कर विज्ञान सिद्ध करता है कि, एक दृष्टिकोण से जो पृथक-करण (Separation) या विलय ( dissolution ) है, वही दूसरे दृष्टिकोण से प्रेम और आकर्षण है।

समग्र संसार शक्ति के सागर में केवल भँवर और लहरें है। वेदान्त के अनुसार, वह बल, शक्ति का वह तेज तुम्हारा सच्चा स्वरूप है, वही तुम हो। यह अनुभव करो। वही शक्ति और शक्ति का तेज प्रेम कहलाता है।

डारविन ( Darwin ) और दूसरे विकास-वादियों वा परिणाम वादियों ( Evolutionists ) ने, जीवन-प्रयास (Struggle for existence) पर अवलम्बित,जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उसकी ड्रमंड ( Drummond ) सरीखे विचारवानों ने पूर्ति या परिपूर्ति की है। वे स्पष्ट करते हैं कि विकास केवल प्रयास और युद्ध के द्वारा ही नहीं होता,किन्तु अधिक करके प्रेम,सच्चरित्र, और आकर्षण द्वारा होता है।

सम्पूर्ण इच्छा प्रेम है, और प्रेम परमेश्वर है, और वह परमेश्वर तुम हो। उससे, अपनी अनन्यता अनुभव करो और तुम हरेक वस्तु से परे खड़े हो जाते हो। लोग इच्छा के इन भँवरों या नाँदों को समुद्र से, जिस में ये भँवर और चक्कर पड़ते हैं, पृथकवत् देखते हैं।

उदाहरण के लिए, यहाँ एक झील है, और हम कहते हैं, "आओ, बच्चे, देखो, यह एक सुन्दर प्रशान्त झील है"। थोड़ी देर बाद एक तूफान आता है और झील के शान्त, अक्षुब्ध तलपर कुछ लहरें, तरंगें और हिलोरें उठती हैं, और आप कहते हैं, " बच्चे, देखो, इसमें तरंगें, भँवर, हिलोरें हैं"। प्रशान्त जल को हम भूल जाते हैं और झील पर के केवल

नए रूपों का विचार करते हैं। अब भी जब झीलमें वह भँवर, और हिलोरें हैं,अब भी झील जल ही है,और हिलोरे वही जल हैं, जो झील है।

जब झील की सतह शान्त थी तब वहां पानी था, और अब भी झील की सतह आंदोलित और संक्षुब्ध है वहां पानी है। किन्तु नये रूप, कुण्डल या चक्र, इत्यादि प्रकट होगये हैं और हम बच्चे से आकर पानी देखने को नहीं कहते, बल्कि बच्चे का ध्यान भँवरों और हिलकोरों की तरफ खींचते हैं। यहां भँवरों और हिलकोरों के रूप ने जलको एक शक्ल में ढाला है, नादों या लहरों ने झील को ढक लिया है। लहरों की कल्पना ने झील या जल की कल्पना को छा लिया है। इसी तरह मनुष्यों के मामले में इच्छाएं एक प्रकार की लहर या भँवर हैं, एक रूप मात्र हैं। इच्छा का यह रूप सत्यता की कल्पना को छा लेता है। रूप से सत्यता दबा दी जाती है। वेदान्त चाहता है कि आप रूप का विवेक करें, उसकी उपेक्षा न करें। किन्तु भँवर या तरंग के रूप का विवेक करते समय उसकी आधार भूत सत्यता की उपेक्षा न कीजिए। इस तरह जब कोई प्रतिकार करता है तब तुम अपना अनादर समझते हो,तुम बेतरह रुष्ट होजाते हो। दैवी-नियमको अनुभव करो। नियम यह है कि तुमने अपने मनको प्रकृति से विरोध-ताल बनाया है और वह मनुष्य आकर तुम्हें दिखलाता है कि तुम प्रकृति से असंगत हो। अपने को नीरोग करो और वह मनुष्य तुम्हारा तिरस्कार न करेगा। यही कानून है। धार्मिकों को इसे अपनाना चाहिये। ज्योंही तुम निराशा या प्रकृत से युद्ध की हालत में आ जाते हो, उसी क्षण सारा संसार तुम्हारे विरुद्ध खड़ा हो जाता है।

मन की शांति बढ़ाओ, अपने मन को पवित्र विचारों से

परिपूर्ण करो, और फिर कोई तुम्हारे विरुद्ध नहीं हो सकता, यही कानून है। वेदान्त कहता है, "दूसरों की इच्छाओं का या अपनी ही इच्छाओं का गलत इस्तेमाल न करो"। अगर तुम अपनी स्थिरता क़ायम रक्खो तो वे सब इच्छायें, जो तुम्हारे मन में प्रकट हो रही हैं, काबू में आ जाँयगी, अवश्य ग़ायब हो जाँयगी। यदि तुम उनके प्रति यथार्थ भाव रक्खो तो बड़े ही विचित्र ढँग से ठीक समय पर इसका अनुभव हो जायगा। अपनी ही इच्छाओं के प्रति भ्रांत भाव रखने से ही तुम मामलों को बिगाड़ देते हो, और अवांछनीय परिस्थितियों को उतपन्न करते हो।

अपने मन में प्रकट होने वाली इच्छाओं का उचित उपयोग करो। यह कैसे किया जा सकता है? हम एक दृष्टांत देते हैं। एक मनुष्य घोड़े की पीठपर सवार होकर किसी दूर स्थान को जा रहा था। घोड़ा थका हुआ मालूम पड़ता है, वह घोड़े को खिलायेगा अवश्य, किन्तु घोड़े की थकान या भूख वह अपने सिर नहीं ओढ़ता। वह जानता है कि घोड़ा थका और भूखा है और वह (मनुष्य) उसकी ज़रूरतों को पूरा भी करेगा, किन्तु उसकी थकान को अपने सिर नहीं ओढ़ेगा। वह घोड़े की सेवा करता है, परन्तु वह अपने को उद्विग्न, ऊटपटांग, बकझक या क्लेश की दशा में नहीं ले आता।

आत्मानुभवी मनुष्य या सच्चा वेदान्ती इस देह को इसी तरह देखता है जिस तरह घोड़सवार अपने घोड़े को। यदि देह थकी मांदी है, यदि पेट भोजन या जल चाहता है, तो सुलभ होने पर आवश्यक भोजन या जल वह देह को दे देगा, किन्तु साथही वह अपनेको भूख और प्यास से परे रक्खेगा। यह विचित्र कल्पना प्रतीत होती है, किन्तु जब

तुम इसका अभ्यास करने लगोगे,तब बहुत शीघ्र तुम्हें इसका अनुभव हो जायगा। यह व्यावहारिक या अभ्यास-सिद्ध है।

भूख और प्यास देह की बातें हैं और मन को वे भान होती हैं। किन्तु वह स्वयं, शुद्ध आत्मा, व्यथित या व्यग्र नहीं होता। जो अपने स्वरूप को, जो परमेश्वर है, अनुभव करता है, वह देह की थकन, भूख या प्यास से व्यथित या व्यग्र नहीं होता। घोड़े की थकन और भूख सवार को नहीं परेशान करती। उनका भान तो होता है किन्तु वे पीड़ा का कारण नहीं होतीं। इसी प्रकार देह की परिस्थितियों और पास पड़ोस को कुछ पदार्थों की आवश्यकता होती है। अपने आवश्यक कर्तव्यों को पालन करने के लिए मन और बुद्धि को उन चीज़ों की ज़रूरत पड़ती है, और ये ज़रूरतें इच्छाओं के समान हैं। वेदान्ती इन इच्छाओं को देखता है, किन्तु मन जब इन इच्छाओं के भोगने में पड़ा रहता है, तब भी आत्मानुभवी मनुष्य अपना शिर पानी से ऊपर रखता है, वह इच्छा से परे होता है। कोई भी इच्छा उसके लिए पीड़ा का कारण नहीं होती, ठीक उसी प्रकार जैसे एक चिड़िया किसी वृक्ष के पल्लव पर जब बैठती है तब कुछ देर तक वह बैठी रहती है, वृक्ष का पल्लव इधर उधर हिलता डोलता है, किन्तु चिड़िया को इसकी परवाह नहीं होती, वह वैसी ठीक ही रहती है, वह यह जानती है कि यदि डाली टूट कर ज़मीन पर गिर भी पड़ेगी तो मेरे पर तो हैं। वह मानो सदा उड़ रही होती है। वह फुनगी (टहनी) पर तो बैठी है तथापि उससे परे है। देखने में वह डाली के आश्रित है, किन्तु यथार्थ में वह डाली से ऊपर है। इसी तरह वेदान्तियों में चाहे साधारण मनुष्य की जैसी इच्छाएँ जान पड़ें, किन्तु वे उन से परे हैं। कोई इच्छित वस्तु खो जाने पर

वेदान्ती को कोई पीड़ा या शोक नहीं हो सकता। सब तरह की इच्छाओं को रखने वाले लोग रोते और पीटते हैं, जब इच्छा की कोई वस्तु उन्हें छोड़ देती है, क्योंकि वे उसके भरोसे होते हैं। वेदान्ती उस पर निर्भर नहीं करता।

यह एक पेन्सिल है, किसी आदमी की है। अगर यह खो जाय तो क्या तुम्हें रंज होगा? नहीं। तुम इसकी तालाश चाहे करो, किन्तु न मिलने पर तुम्हारा क्या बनता बिगड़ता है। मान लो कि तुम्हारे पांच हज़ार रुपये खो जाँय। अरे, तब तो तुम्हारा कलेजा चूर हो जायगा। पेन्सिल की भी तुम खोज करते हो, और खोए हुए पाँच हज़ार रुपयों की भी तुम खोज करते हो, किन्तु खोजने के ढंग में आकाश पाताल का अंतर है। अपने पाँच हज़ार रुपयों को तुम टूटे हुए दिल से खोजते हो, किन्तु खोई हुई पेन्सिल को तुम टूटे हुए दिल से नहीं खोजते। वेदान्ती के इस पाँच हज़ार मुद्राओं की हानि पेंसिल की हानि के बराबर है। एक कहानी कहकर हम इसका दृष्टान्त देंगे।

भारत में एक साधु एक बड़े नगर की सड़कों पर जा रहा था। एक महिला उसके पास पहुँची और उससे कहा कि मेरे साथ मेरे घर पधारिए। उसने बिनती की कि दया पूर्वक मेरे घर पर चलिए। वह उसके साथ गया और जब मकान पर पहुँचा तो महिला उसके लिए एक कटोरा दूध लाई। यह दूध एक बर्तन में उबल रहा था और बर्तन के मोहरे पर बहुत मलाई जम गई थी। जब दूध कटोरे में डाला गया तब सारी मलाई कटोरे में गिर पड़ी। भारत वर्ष में नारियाँ मलाई देना नहीं पसंद करतीं। इस लिए वह बड़ी परेशान हुई, उम्दा मलाई कटोरे में गिरी देख वह बहुत विकल हुई, और चिल्ला उठी, "हाय हाय"। उसने दूध में शक्कर

मिलाकर दूध से भरा हुआ उत्तम कटोरा साधु को दे दिया। उसने कटोरा उस से ले लिया और एक मेज़ पर रख कर कुछ बात चीत करने लगा। महिला ने समझा कि बहुत गरम होने के कारण महात्मा जी ने दूध नहीं पिया। अंत को बाबा जी जब चलने को तैयार हुए तब नारी ने कहा, "महाराज! क्या आप यह दूध पीने की अनुग्रह मुझ पर न करेंगे"? भारत में नारियां सदा देवियां कहकर संबोधित होती हैं। साधु ने उत्तर दिया, "देवि! यह किसी साधू के छूने योग्य नहीं है।" उसने कहा, "क्यों, क्या कारण है?" साधु ने उत्तर दिया, "जब तुमने दूध डाला, तब उस में शक्कर और मलाई छोड़ी, और कुछ चीज़ और भी तुमने उसमें मिलाई, तुमने उस में 'हाय हाय' भी मिला दी है; और जिस दूध में 'हाय हाय' मिलाई गई है, उसे मैं नहीं पी सकता"। इस उत्तर से वह झेप गई और साधू घर से चल दिया।

साधू को दूध देना तो बहुत ठीक था, किन्तु उसमें 'हाय हाय' मिलना गलत था। इस लिए वेदान्त कहता है, काम करो, इच्छाओं को सेवो, किन्तु कुछ करते समय तुम्हारा कलेजा फटने की क्या ज़रूरत है। वह "हाय हाय" न मिलाओ। काम में वह कदापि, कदापि न मिलाओ। काम करो, किन्तु इस तरह पर कि जैसे कोई निरासक्त करता है। अपनी स्थिरता को न नष्ट करो। अपने आप को परिस्थितियों के अनुकूल बनाओ और तुम देखोगे कि यथार्थ भाव से काम करने पर तुम्हारे सब काम अत्यन्त विचित्रता और विलक्षणता के साथ सफल होंगे।

अब, तुम्हारी स्थिति कैसे सुधरे, तुम्हारी स्थिरता कैसे क़ायम रहे? लोगों को यह बड़ी कठिनाई है कि उनके सब सम्बन्ध और सम्पर्क अवैज्ञानिक, अपवित्र, और शिथिल हैं।

वेदान्त कहता है कि तुम्हारे सम्बंध और सम्पर्क तुम्हारे सहायक होने चाहिएं न कि बाधक। इस संसार में हरेक चीज़ जो तुम्हें मिले वह गिराने वाला ढेला होने के बदले ऊपर चढ़ने का ज़ीना बना ली जानी चाहिए। अपने गति-कुंठन स्थान (Stumbling block) अर्थात् गिराने वाले ढेले को ऊपर चढ़ने के ज़ीने में (Stepping stone) बदल दो।

आप जानते हैं कि यदि यह अँधेरा कमरा हो और हम इस में घुसें, तो पहले हमें कुछ नहीं दिखाई पड़ता। किन्तु अँधेरे में देखते रहने पर अँधेरे कमरे की सब चीज़ें दिखलाई पड़ने लगती हैं, ध्यान से नज़र गाड़े रहने पर सब पदार्थ लख पड़ेंगे।

वेदान्त कहता है कि ये सब सम्बन्ध जो तुम्हें बाँधे हैं, जो तुम्हें तुम्हारी यथार्थ सत्यता वा परमेश्वर से अलग रखते हैं, इनके उस पार तुम्हें देखना चाहिये, इन का निरीक्षण करना चाहिए, ध्यान पूर्वक इन पर दृष्टि रक्खो, और ये तुम्हारे लिए पारदर्शी बन जाँयगे, तुम इन के आरपार देखने में समर्थ होंगे और इन से परे तुम परमेश्वर देख सकोगे। पहले यह अजीब बात मालूम पड़ेगी, किन्तु धीरे २ यह व्यावहारिक हो जायगी। अपनी स्थिति सुधारने से, ठीक तरह से वस्तुओं को देखने से, सब सम्बंध, हमारे सब सम्पर्क दर्पण-शिला सरीखे पारदर्शी हो जाते हैं, वे हमारी दृष्टि को नहीं रोकते। इस तरह वेदान्त चाहता है कि आप अपनी स्थिति सुधारें, ताकि हरेक वस्तु पारदर्शी बन जाय और बाधक न रहे। नहीं, नहीं, यह तुम्हारे लिये सम्भव है कि यदि आप वेदान्त को ठीक ठीक समझें, यदि उसकी शिक्षा को आप धारण करें, तो आप के लिए यह "भी सम्भव है कि पत्थरों को आप, न केवल पारदर्शी काँच

शिलाओं में ही बदल दें बल्कि उन्हें लेन्सों ( lenses ) ऐनकों या दृष्टि के सहायकों में परिणत करदें, जिनसे रुकावट न पड़ कर दृष्टि उन्नति को प्राप्त हो। सूक्ष्म, दर्शन यन्त्र (microscope ) सहायता देते हैं, उससे दृष्टि की कोई कमी नहीं होती।

यदि एक टन ( २७ मन ) या अधिक चारा हाथी की पीठ पर लादा जाता है, तो उस बोझ को वह ( पशु ) ज़रूर उठा लेता है, कठिनतासे और बड़ा जोर लगाकर वह उस बोझे को ढोता है। यह एक टन या अधिक घास, चारा, या पयाल हाथी की पीठ पर ढोया जता है और यह बोझा हाथी के लिए मुसीबत और परेशानी का सामान हो जाता है। किन्तु वही घास, चारा, या पयाल जब हाथी खाता है, और उसे परिपाक ( पचा ) आत्मसात् कर के अपनी देह के रूप में ले चलता है, तब क्या वही बोझा उसके लिए बल और शक्ति का स्रोत नहीं बन जाता? अवश्य बनता है।

इस लिए वेदान्त आप से कहता है कि दुनियाँ के सब बोझे अपने कन्धों पर ले चलिए। यदि तुम उनको अपने मूंड़ पर ले चलोगे तो उनके बोझा से तुम्हारी गर्दन टूट जायगी, यदि तुम उन्हें पचा लोगे, उन्हें अपना बना लोगे, यों कहिए कि तुम उन्हें खा लोगे, उन्हें अपना ही स्वरूप अनुभव कर लोगो, तो तुम जल्दी २ बढ़ोगे, तुम्हारी अग्रसर गति पिछड़ने के बदले अद्भुत हो जायगी!

जब आप वेदान्त को अनुभव करते हैं, तब ईश्वर को कैसा महान आश्चर्य्य है—आप देखते हैं, आप लखते हैं, ईश्वर आप खाते हैं, ईश्वर आप पीते हैं, और ईश्वर आप में वास करता है। जब आप ईश्वर का अनुभव करेंगे तब आप को यह दिखाई देगा। आप का भोजन ईश्वर ( के रूप )

में बदल जायगा। ईश्वर के नेत्र हरेक वस्तु से आगे निकले रहते हैं। वेदान्ती के नेत्र हरेक वस्तु को परमेश्वर बना देते हैं। हरेक वस्तु उसे प्यारी है, परमेश्वर है, परमेश्वर हर तरफ हमारे सामने है, कोने कोने से हमारी ओर ताक रहा है, सारा संसार बदल कर स्वर्ग हो गया। इस तरह, वेदान्त तुम्हारी इच्छाओं को हर कर तुम्हें दुखी नहीं बनाता, किन्तु वेदान्त तुम से इन इच्छाओं को सुधरवाता है और उन्हें तुम्हारी चेरी बनाता है। उनके जुल्मों का शिकार होने के बदले, वेदान्त चाहता है कि तुम उनके मालिक बनो।

यह एक घोड़ा है और एक आदमी घोड़े की दुम पकड़ लेता है। घोड़ा लतियाता है, पिछड़ता और तेज़ भागता है, उछलता है, और उसे (दुम पकड़ने वाले को) फिराता है। क्या यह वाँछनीय और सरल स्थिति है? दुनियादार लोगों की यही हालत है। इच्छाएँ घोड़ों के तुल्य हैं, और ये (लोग) घोड़ों की पूँछ पकड़े हैं और घोड़े (इच्छाएँ) लोगों को अपने पीछे घसीटते हैं और उन्हें अधम तथा अति दीन दशा में डाल देते हैं। वेदान्त कहता है, "इच्छा रूपी अश्व की पूँछ न पकड़ो। स्थिति के मालिक बनो, न कि प्रजा या ग़ुलाम। अपने सच्चे स्वरूप (आत्मा) का अनुभव करने पर तुम देह के मालिक बन सकते हो। केवल अन्तर्गत ईश्वरत्व का अनुभव करने ही पर तुम उसे (देह) वश में कर सकते हो, अन्यथा नहीं।

अब भी एक और शंका है:—इस पुस्तक में बताये हुए ढँग से यदि हम अपने मन, ध्यान, और उद्योग शक्ति को एकाग्र करते जाँय, तो क्या प्रतिक्रिया न होगी? क्या दिमाग़ पर इसकी प्रतिक्रिया न होगी, इससे वह दुर्बल न होगा?

नहीं, नहीं। राम निजी अनुभव से तुम्हें बतलाता है कि

दिन बदिन तुम्हें केवल बल ही बल प्राप्त होगा। किसी प्रकार की दुर्बलता न पैदा होगी, केवल शक्ति, उत्साह, अतीव बल तुम्हें मिलेगा। अभ्यास की विधि के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहने ज़रूरी हैं।

प्रभात या किसी समय, इस पुस्तक में बताये हुए उपायों का जब तुम अभ्यास शुरू करोगे तब तुम्हारा मन सच्चिदानन्द स्वरूप में लीन हो जायगा। जब तुम इस अवस्था में पहुँच जाओ तब ॐ का उच्चारण (अभ्यास) मत जारी रक्खो, उसे बन्द करदो। जब तक यह अवस्था रहना चाहे रहने दो, क्रमशः लौकिक भावना या देह-अध्यास आप से आप आ जायगा। बलात् कुछ भी न करो, ॐ का जप भी ज़बर्दस्ती न करो। जब वह अवस्था आ जायगी, तब देह-अध्यास तुरन्त आ जायगा। हो सकता है कि आप लोगों में से अनेक उस सच्चिदानन्द की अवस्था में आध घंटे, शायद एक, दो, या तीन घंटे या अधिक समय तक रह सकें। किन्तु कल ही आप देर तक उस अवस्था को न रख सकेंगे। दिन बदिन समय की बढ़ती होगी और क्रमशः धीरे २ करके आपकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ जायगी।

इस अभ्यास के आरम्भक जिज्ञासुओं (beginners) को आध घंटे से अधिक समय इस में लगाने की सलाह राम नहीं देता। राम उन्हें सलाह देता है कि वे इस अभ्यास में २० या २५ मिनट तक लगने की अपनी हद बाँध लें। किन्तु जो लोग पहले यह अभ्यास कर चुके हैं वे आप ही इस अभ्यास में अधिक समय लगावेंगे।

सामान्य रूप से नियम यह है कि अत्यन्त आध्यात्मिक प्रवृत्तिवाले और वे लोग जो इस विचारके मार्ग में पहले ही से कुछ किए हुए हैं आरम्भक जिज्ञासुओं से अधिक अनुभव

करेंगे। पहले ही से इस तुम्हारी जितनी अधिक घनिष्टता और मैत्री होगई है उतनाही अधिक तुम उस अवस्था में ज़्यादा समय तक रहना पसन्द करोगे।

एक बात और। जब तुम मनको एकाग्र करने लगो, और अपनी ईश्वरभावना को अनुभव करने लगोगे, तब कुछ कल्पना या कल्पनाएं तुम्हारे मनके सामने उदय होंगी। उस समय ॐ जपते रहो और साथ ही मनमें उदय होने वाले उस विचार के तागे को ले लो और उसका इस तरह से अन्त करदो।

जब मनुष्य ॐ जप रहा हो और शुद्ध, अनन्तस्वरूप, पवित्र अनन्त उसके आस-पास हो, जब आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए मनुष्य का मन कटिबद्ध हो, तब यदि कोई सांसारिक विचार आ जाय तो उसका ऐसा निर्णय करना अथवा ऐसा सार निकालना चाहिए कि, भावी जीवन में वह आचरण की अवस्था हो सके। अब इस पर ध्यान दीजिए, और आपने इन बातों का चाहे कभी अनुभव किया हो या नहीं, ये आवेंगी, और ये विचार आप के बाधक हो सकते हैं, और राम के शब्दों से उपकार होगा।

मान लीजिए कि आप ॐ जपना शुरू करते हैं, और जपते समय किसी पदार्थ के लिए प्रेम या घृणा का भाव उठता है। वहां तो विचार था कि इस भाव को तुम्हारी अग्रसर उड़ान ( उन्नति ) में न घुसना या विघ्न डालना चाहिए था। अब तुम्हें इस भाव को क्या करना चाहिए? इसे लेकर जड़ से उखाड़ दो, अपने मन से सदा के लिये इसे निर्मूल करदो ! क्योंकर ? । ये भाव केवल ज्ञानसे निर्मूल किया जा सकता है। जब द्वेष का भाव मन में प्रवेश होता है, उसे ले लो, उसे अनुभव और छिन्न-भिन्न करना शुरू करो, उसका सच्चा कारण ढूँढ़ो। आप सदा देखेंगे

कि सच्चा कारण अज्ञान, दुर्बलता, देह को इस आत्मा रूपी अहं की उपाधि का दिया जाना, 'मैं देह हूँ' की भावना इत्यादि है। मन को एकाग्र करते समय अनाधिकार प्रवेश करनेवाले इन विचारों का कारण सदा, इस तरह की अविद्या है। ऐसे मामलों में, राम का कहना है कि "इन विचारों की छान-बीन करो और ज्ञान से इन्हें निर्मूल करो और ॐ ॐ जपते रहो। प्रणव जपते समय भविष्य में इन विचारों का प्रतिरोध करने की दृढ़ प्रतिज्ञाएं और अटल निश्चय करो, भविष्य में इन स्वार्थपूर्ण अभिप्रायों को परास्त करने की प्रतिज्ञा दृढ़ता से करो। ये अटल प्रतिज्ञाएँ एक वार की जाने पर तुम्हारे चरित्र बल का निर्माण करेंगी और तुम्हारी साधु दृष्टि को बलवान् बनावेंगी। संसार में भ्रमण करने में तुम्हारे सांसारिक व्यापारों में, तुम्हारी तात्विक शक्ति तुम्हें बहुत सहायता देगी।

मानलो कि उस विचार को निर्मूल करने में, बल बढ़ाने में और ॐ के जप से उस विचार को परास्त करने में आध घंटा खर्च हुआ, और मानलो कि उस विचार या भावना को जीतने में ही सारा समय लग गया, और चैतन्यात्मा की अवस्था में प्राप्त होने के लिए कुछ भी समय नहीं रहा। कोई परवाह नहीं। यदि उस दिन चैतन्यात्मा की दशा की प्राप्ति न हो तो कोई परवाह नहीं, किसी दूसरे दिन वह प्राप्त हो जावेगी। यदि उस दिन एक निकृष्ट विचार पर विजय प्राप्त हुई है, तो तुम्हारा चरित्रबल बढ़ गया। यदि इस जीवन में तुम प्रलोभन का प्रतिरोध और दमन करने में समर्थ हो गये तो भविष्य के लिए तुम्हें सुन्दर चरित्र प्राप्त हो गया और तुम्हारे लिये इतना ही स्वयं पर्याप्त है। इस तरह तुम्हारे चरित्र का निर्माण हो जायगा,

और इसी तरह तुम्हारी आध्यात्मिक शक्तियाँ दिन बदिन बढ़ेंगी। तुम्हारे मन की एकाग्रता के सम्बन्ध में पूछो तो वह चाहे आवे या न आवे। कभी कभी आत्मानुभव या सत्य की उत्कट जिज्ञासा भी एक दोष हो जाती है, उस अवस्था की प्राप्ति में विघ्न रूप बन जाती है।

कुछ लोग कहते हैं, "अजी जनाब! हम चित्त की एकाग्रता की कोई विधि, आत्मानुभव का कोई उपाय चाहते हैं, हम व्याख्यान नहीं चाहते, हम पढ़ने की सामग्री नहीं चाहते।" ये लोग भ्रान्त है। कौन सा विघ्न तुम्हारे मार्ग को आच्छादन कर रहा है? इस परमात्मा, इस चैतन्यात्मा या इस आत्मानुभव से तुम्हें अलग रखने वाली कौन सी वस्तु है? वह है तुम्हारा अज्ञान। और अज्ञान क्या है? सन्देह, शंकाएँ, सांसारिक विचार, मिथ्या भावना अज्ञान है। मिथ्या संकल्प, सांसारिक ख्याल और असत् प्रवृत्तियां अज्ञान हैं। ये हैं सब जो तुम्हारी उन्नति को रोकते हैं। श्रधा का अभाव अज्ञान है। जिसे ईश्वर से अपनी अभिन्नता में संदेह नहीं है, वह सदा समाधि में है। तुम्हारे सन्देह और शंकाएँ ही तुम्हारे मनों को भटकाया करती हैं। तुम्हारे संशय ही तुम्हें इधर-उधर भटका देते हैं। जो मनुष्य इस तरह का साहित्य पढ़ता है, जो इन विषयों का अनुसन्धान करता है, जो अध्ययन करता है, वह धीरे धीरे अपने सब संदेहों पर विजय पा रहा है, अपने सब संशयों को परास्त कर रहा है। वह मनुष्य चलते-फिरते, खाते, पीते, या बात-चीत करते उसी अवस्था में है जिस में साधारण मनुष्य नेत्र बन्द करके चुपचाप बैठ कर ध्यान लगाने के समय होता है। अनेक लोगों में असाधारण अवस्था में जितनी शक्ति होती है उससे अधिक इस साधारण अवस्था में होती है।

# प्रश्न और उत्तर

२६ फरवरी १९०३ को दिया हुआ व्याख्यान।

**प्रश्न**—वह कौन है जो कहता है, "मैं यह देह हूँ, मैं आत्मा हूँ, मैं स्वयं हूँ" ?

**उत्तर**—सच्ची आत्मा में कोई शब्द नहीं हैं। सच्चे स्वरूप के स्थिति बिन्दु से इस तरह का, कि "मैं ब्रह्म हूँ, मैं यह या वह हूँ", कथन करने की कोई सम्भावना नहीं है। कोई भी शब्द सच्ची आत्मा तक नहीं पहुँच सकते, आत्मा सब शब्दों से परे स्थित है। इस प्रकार "मैं ब्रह्म हूँ, मै आत्मा हूँ, मैं परमेश्वर हूँ" यह बयान आत्मा से नहीं किया जा सकता क्योंकि आत्मा सब शब्दों से परे है। वह कथन बुद्धि (सूक्ष्म शरीर), या किसी दूसरे नाम से आप चाहे उसे पुकारें, उसके द्वारा किया जाता है। प्रश्न है कि, यदि चित "मैं ब्रह्म हूँ, मैं परमेश्वर हूँ" बयान करता है तो उसका यह बयान न्याय संगत नहीं है, क्योंकि चित्त और बुद्धि ब्रह्म नहीं है। वेदान्त कहता है, एक दृष्टिकोण से चित्त और बुद्धि ब्रह्म नहीं हैं, किन्तु दूसरे हिसाब से मन और बुद्धि ब्रह्म के सिवाय कुछ और हैं ही नहीं, शरीर भी ब्रह्म के सिवाय कुछ और नहीं है, और संसार में हरेक वस्तु ब्रह्म के सिवाय कुछ और नहीं है। जब हम कहते हैं कि काला साँप रस्सी है, तब "रस्सी" साँप का गुण वैसे नहीं होती जैसे "काला" साँप का गुण होता है। साँप काला है। यहाँ पर गुण "काला" साँप का है, किन्तु जब कहा जाता है कि साँप रस्सी है तब रस्सी साँप का गुण नहीं होती। इसी प्रकार,

जब हम कहते हैं कि मन, देह या बुद्धि ब्रह्म या आत्मा है, तब ब्रह्म या आत्मा मन, बुद्धि या शरीर का गुण नहीं है। एक अर्थ यह है कि, मन, बुद्धि, या शरीर अपने बाह्य स्वरूप को त्याग करता है और परमेश्वर या परमात्मा को पाता है। सो जब हम कहते हैं "मैं ईश्वर हूँ, मैं परमेश्वर हूँ" तो यह अर्थ नहीं होता कि ईश्वर मेरा एक गुण है, जैसे कि जब हम कहते हैं कि "मैं सम्राट हूँ", क्योंकि सम्राट एक गुण है, किन्तु परमेश्वर मेरा गुण नहीं है। यह कथन "मैं परमेश्वर हूँ" वैसा कथन नहीं है जैसा "साँप काला है"। "मैं परमेश्वर हूँ", यह कथन यदि ऐसा कथन होता कि परमेश्वर को तुम्हारा गुण बनाता, तो यह कथन अधार्मिक होता, किन्तु जैसा कुछ यह है, "मैं परमेश्वर हूँ" इस बयान का अर्थ है कि बाह्य अपने आप (स्वरूप) को माया मात्र अनुभव करना है, और सच्ची आत्मा को उसके पूर्ण रूप में व्यक्त करना है। अरे! परमेश्वर मैं हूँ।

ऐ दुनिया के लोगों, यदि तुम मुझे राम या स्वामी कहते हो, यदि तुम मुझे यह या वह कहते हो, तो तुम गलती पर हो। परमेश्वर मैं हूँ, यह शरीर मैं नहीं हूँ।

एक मनुष्य सोया हुआ था, और नींद में उसे जान पड़ा कि चोरी का दोष मुझ पर लगाया गया है, मैं फकीर हो गया हूँ, बड़ी ही दीन दशा में हूँ। स्वप्न में सब देवताओं से उसने सहायता के लिये प्रार्थना की, वह इस और उस कचेहरी में गया, वह इस और उस वकील के पास गया, वह अपने सब मित्रों के पास गया और उसने सहायता चाही, किन्तु सहायता न मिली। उसे जेल होगई और वह बहुत रोया, क्योंकि कोई उसका सहायक न था। एक सर्प ने आकर उसे काट खाया और बड़ा दर्द उसे जान पड़ा।

इस पीड़ा की तीव्रता ने उसे जगा दिया। निद्रा में जिस सर्प ने उसे काट खाया था उस ( सर्प ) को उसे धन्यवाद देना चाहिए था। जब कभी हम विकट और शोकजनक चीज़ें स्वप्न में देखते हैं, जब कभी हमें दारुण स्वप्न होता है, तब हम जाग पड़ते हैं। सो स्वप्न में सर्प ने उसे जगा दिया, और उसने अपने को बिछौने पर ठीक-ठाक बैठा पाया, उसने अपने को अपने कुटुम्बियों से घिरा हुआ पाया, और वह सुखी था। अब, हम कहते हैं कि स्वप्न में वह बंधन में आ गया था, उसने छुटकारे की फिक्र की और स्वप्न में सर्प ने आकर उसे काट खाया, और यह सर्प भी वही वस्तु था जो स्वप्न की दूसरी वस्तुएं थीं, भेद केवल यही था कि इस सर्प ने उसे जगा दिया, उसे चौंका दिया। उस ( सर्प ) ने उसे खा लिया। हमारा यह अभिप्राय नहीं है कि सर्प ने मनुष्य को खा लिया, किन्तु उसने मनुष्य के स्वप्नदर्शी अहंकार को खा लिया। मनुष्य का स्वप्नदर्शी अहं वही था जो स्वप्न के दूसरे पदार्थ थे। और इस सर्प ने मनुष्य के केवल स्वप्नदर्शी अहं को ही नहीं नष्ट कर दिया बल्कि स्वप्न के दूसरे सब पदार्थों को भी, अर्थात् जेल, जेलदार, बन्दर, सिपाही और बाकी सबको, मिटा दिया। किन्तु यह सर्प एक विचित्र सर्प था, इसने बड़ा ही अद्भुत कृत्य किया, यह अपने आप को खागया, क्योंकि जब मनुष्य जागा तब उसने इस अद्भुत सर्प को नहीं देखा।

वेदान्त के अनुसार, यह सम्पूर्ण जगत, जिसे तुम देखते हो, केवल स्वप्न है, माया है, और स्वप्न देखने वाले तुम आप क्या हो। तुम स्वप्नदर्शी अहं हो, स्वप्नदर्शी अपराधी, या चोर इत्यादि हो, और तुम्हारे सब मित्र और अन्य लोग कारागार के संगी हैं, जिनसे तुम सहायता चाहते और

मदद माँगते हो। स्वर्ग और नरक के सब देवताओं से तुम सहायता मांगते हो, पर वे तुम्हें छुटा नहीं सकते। तुम मदद मांगने अपने मित्र के पास जाते हो, किन्तु वहां शान्ति नहीं है, सच्ची सहायता नहीं है। सच्ची या असली खुशी तुम्हें बिना उस समय के आये नहीं मिलती जब कि तुम अपने को सर्प से काटा हुआ पाते हो। अब वह सर्प क्या है? त्याग का सर्प। त्याग सर्पवत् जान पड़ता है और वह तुम्हें काटता है। त्याग शब्द तुम्हें विकट जान पड़ता है, वह मानो तुम्हें डँसता है। सच्चे त्याग का अर्थ है ज्ञान, उसका अर्थ है वेदान्त।

जब यह सच्चा त्याग आता है तब पीछे पीछे वह आता है जिसे हम ज्ञान कहते हैं। "मैं ब्रह्म हूँ, मैं परमेश्वर हूँ, मैं प्रभुओं का प्रभु हूँ", इस महा वाक्य का अनुभव हो जाता है। यहाँ यह वाक्य "मैं ब्रह्म हूँ, आत्मा हूँ" अमेरिकनों और यूरोपियनों के कानों को फुफकारता हुआ वाक्य प्रतीत होता है। यह फुफकारता हुआ सर्प है जो तुम्हें डस लेगा, और तुम कहते हो, "क्या खूब, ऐसा असंगत विचार मैं कैसे रख सकता हूँ, इतनी औंधी बात मैं कैसे कह सकता हूँ"।

अरे भाइयो! साँप से डँसवा लो। उसका काटना और डसना अभिनन्दनीय है। उन (दंशों) से तुम्हारी मुक्ति हो जायगी, वे तुम्हें सब चिन्ता और क्लेश से छुटा देंगे। यह सत्य तुम में गरल (विष) नहीं घोलता, यह तुम्हारी हस्ती में अमृत डालता है, और तुम जाग पड़ते हो, तथा स्वप्नदर्शी अहंकार चलता बनता है और दुनिया भी चल देती है।

राम जिसकी चर्चा कर रहा है वह कोई अनुमान नहीं है, किन्तु सत्य या तथ्य है. जिसे तुम अपने ही अनुभव से

प्रमाणित कर सकते हो। सब दर्द, दुःख, चिन्ता तुरन्त गये गुज़ेर होते हैं।

स्वप्न में चोर का बयान होता है कि "मैं शरीर नहीं हूँ"। क्योंकि तुमने परमेश्वर को चोराया है, तुमने सत्य को चोराया है, तुमने अपने सच्चे स्वरूप को छिपाया है, इस लिए तुम स्वप्न में चोर हो। और स्वप्न में इस चोर को सत्यरूपी सर्प, "मैं आत्मा हूँ" डसता है। इस तरह स्वप्न में चोर को "मैं आत्मा हूँ" का प्राण दायक दंड प्राप्त होता है और परिणाम यह होता है कि तुम जाग पड़ते हो, तथा सच्ची आत्मा अपने पूर्ण तेज से दमकती है, और यह आत्मा दुर्लभ है। यह अवर्णनीय है। भाषा इसे नहीं पहुँच सकती।

**प्रश्न**—यदि मृत्यु जीवित की निद्रा के समान है, तो क्या इसका यह अर्थ है कि हम नहीं जानते कि उस समय मृत्यु के प्रदेश में क्या हो रहा है?

**उत्तर**—जब तुम मृत्यु की नींद में सोते हो, तब तुम अपनी सृजी हुई दुनिया में रहते हो। जागृत अवस्था में तुम अपनी ही रची हुई दुनिया में रहते हो, तुम अपने आस पास की छोटी, क्षुद्र दुनिया में रहते हो। ऐसी ही मृत्यु की निद्रामें तुम अपनी ही रची हुई दुनिया में रहते हो। इस तरह पर मृत्यु की निद्रा का जागृत अवस्था की दुनिया से वही नाता है जो स्वप्न-लोक का जागृत अवस्था से है।

**प्रश्न**—वह कौन है जो सोता है क्योंकि आत्मा को विश्राम की ज़रूरत नहीं है?

**उत्तर**—आत्मा, सच्चा परमेश्वर कभी नहीं सोता। निद्रा सच्चे स्वरूप को नहीं छू सकती। वेदान्त के अनुसार

यह निद्रा-अवस्था और जागृत-अवस्था भी माया भ्रम के, सिवाय और कुछ नहीं है। निद्रा केवल चित्त या मिथ्या 'मैं' को आती है। निद्रा केवल असत्य, वाह्यात्मा, सूक्ष्म शरीर से अपने को युक्त करती है। निद्रा तुम्हारे मिथ्या अहं, माया, स्वप्न, भ्रम का एक रूप है।

**प्रश्न**—क्या चिचवानियों (mediums, अर्थात् जिन पर भूत, प्रेत आते हैं) को मृत आत्माओं (भूत, प्रेत आदि) से सम्वाद मिलते हैं?

**उत्तर**—राम कहता है कि जागृत अवस्था में भी जितने सम्वाद तुम पाते हो वे सब अपने ही भीतर से मिलते हैं। तुम्हारी जागृत अवस्था में सब पदार्थ जो तुम से बाहर प्रगट होते हैं तुम्हारे भीतर हैं। संमोहित, वशीभूत, या आविष्ट (भूत-प्रेत-गृहीत) की अवस्था में भी हरेक वस्तु तुम्हारे भीतर से ही आती है। विश्व के व्यापार के बारे में वेदान्त सारा ज़ोर तुम्हारी सच्ची वास्तविकता के तथ्य पर देता है, वह इस तथ्य पर सारा ज़ोर देता है कि सूर्य, चन्द्र तारागण, ठोस प्रतीत होनेवाला सम्पूर्ण जगत केवल तुम्हारी ही सृष्टि है। लाखों वे आत्माएँ और महात्मा तुम्हारे अन्तर्गत हैं। कुछ भी तुम से बाहर नहीं है।

हाफिज़ नामक दुनिया के एक श्रेष्ठतम कवि की, कि जिसका किसी अंश में इमर्सन (Emerson) ने उल्था किया है, रची हुई फारसी भाषा में एक सुन्दर कविता है। उल्थे में उसका यह अर्थ होता है,—"ऐ मन! तू इस सम्पूर्ण अविश्वास, इस समस्त तर्क-वितर्क को दूर करदे। आ, मेरे लिए भरा प्याला उस सुर्ख शराब का ला जो मुझे स्वर्ग के कपाटों को खोलने की चाभी देती है"। इसका यह अर्थ नहीं है कि

तुम्हें बक्कस ( Bacchus भैरव जी ) का मंत्रशिष्य होजाना चाहिए, इसका अर्थ है कि हमें वह सुरा, ईश्वरत्व की सुधा ( अमृतधारा ) प्राप्त करना चाहिए, हमें ऐसी कोई चीज़ लेना चाहिए कि जो दैवी उन्माद की सृष्टि करेगी। साँप की वह डसन हमें लाभ करना चाहिए कि जो स्वप्न के अधम चोर को जगा देती है। स्वर्ग-द्वार खुलने का यह मार्ग है। अतएव राम कहता है, कृपया कुछ देर के लिए इन इच्छाओं और प्रश्नों को दूर हटाइए और राम के साथ दैवी उन्माद सुख भोग करिए। राम को बोलना होगा, अपने मन की बात कहे बिना वह नहीं रह सकता। तुम्हारी इच्छाओं और विचारों का ध्यान अब राम नहीं रख सकता, तुम्हारी रुचियों का दुलार अब वह और नहीं कर सकता।

ऐ अमेरिका और सारी दुनिया के लोगो! सत्य यह है कि तुम परमेश्वर और धन (Mammon) दोनों की सेवा नहीं कर सकते, तुम दो मालिकों की नौकरी नहीं बजा सकते, दुनिया का भोग करने के साथ ही तुम सत्य का भी अनुभव नहीं कर सकते।

इस प्रकार पूर्ण सत्य की प्राप्ति के लिए तुम्हें सांसारिक इच्छाओं से छुटकारा पाना होगा, तुम्हें दुनियवी रागों और द्वेषों से ऊपर उठना होगा, समस्त बंधनों और ग्रंथियों, अनुरक्तियों और दास्यताओं को तुम्हें अन्तिम नमस्कार करना होगा। तुम्हें इस सब से ऊपर उठना चाहिए। यह है मूल्य, और बिना दिए तुम सत्य का अनुभव नहीं कर सकते। यदि तुम मूल्य देने को नहीं तैयार हो, तो संतुष्ट रहो उस कठोर भाग्य से जो तुम्हें झेलना होगा। यदि तुम साक्षात्कार चाहते हो, यदि तुम परमेश्वर-चेतना अर्थात् ब्रह्मज्ञान चाहते हो, तो कृपा करके आओ, क़ीमत अदा करो फिर हरेक वस्तु

पा जाओगे। ईसा ने विना संकोच (विना रोक टोक) ये शब्द कहे थे। ऐ लोगो! आज-कल्ह इन शब्दों को कितना तोड़ा-मरोड़ा जाता है, श्रोत मंडली (audience) की अँगुली में एक खरोंचा लगा सकने वाले अर्थ हमें देने को कैसे ये (शब्द) उमेठे जाते हैं, और उसे (अर्थात् श्रोतमंडली को) कितना सताया जाता है। यह बात रामको एक कथा याद दिलाती है। भारत में एक प्रसिद्ध, सत्य से परिपूर्ण, परमेश्वरत्व से पागल मनुष्य था। सड़कों पर वह पूरी आवाज़ से पुकारता निकलता था, "परमेश्वर के ग्राहकों आओ"। वह इधर-उधर परमेश्वर को बेचने जाया करता था। परमेश्वर के ऐ खरीदारों! ईश्वरानुभव के ऐ सकल अभिलाषियों! आओ। अरे तुम जो (कार्यभार या शोक चिन्ता से) भारी लदे हो, आओ"। वह अपने देश की भाषा में चिल्लाता था और उस भाषा में परमेश्वर को 'नाम' कहते हैं, वह अपनी भाषा में चिल्लाता था, 'नाम' ले लो, जिसके शब्दार्थ हैं, "मुझे एक वस्तु बेचना है, ऐ लोगों, उसे मोल ले लो, वह वस्तु परमेश्वर है"। वह 'नाम' शब्द का प्रयोग करता था। 'नाम' के दो अर्थ हैं। एक अर्थ है, ईश्वर। दूसरा अर्थ सुन्दर, जटित, मणियों का हार है। किन्तु वह साधु 'नाम' शब्द को ईश्वर के अर्थ में व्यवहार करता था, आभूषण के अर्थ में नहीं। एक दिन 'नाम' और परमेश्वर को बेचता हुआ जब वह सड़कों पर जा रहा था, तब एक भद्रपुरुष ने, जो उत्तम हार खरीदना चाहता था, उसे सड़कों पर पुकारते हुए सुना और उसने सोचा कि यह आदमी अवश्य किसी कोठी वाले का गुमाश्ता होगा और हार बेचना चाहता है। भारत में जब लोगों का व्याह होने वाला होता है तब बहुधा उन्हें अपने या अपनी स्त्रियों के सजाने के लिए बहु मूल्य

गहनों की चाह होती है। मनुष्य ने उस फेरी वाले या साधु का मकान पूछा और उसके घर गया और दंग हो गया। फेरीवाले का घर बड़ा ही दीन था और वह आश्चर्य में पड़ गया कि नाम बेचने वाले का घर इतना दीन-हीन क्यों है। वह घर के भीतर गया। फेरीवाला उसे नहीं मिला। उसने दरवाज़ा खटखटाया। एक सुन्दर छोटी बच्ची बाहर निकली। उसने मकान-मालिक को पूछा, बच्ची ने उत्तर दिया, "मेरा पिता बाहर गया है, वह शाम को यहां आजायगा। किन्तु प्रभो! क्या आप मुझे बतलाने की कृपा करेंगे कि, आप का उनसे क्या काम है? बच्ची की बात चीत से वह बहुत प्रभावित हुआ और उससे बात चीत करनी चाही। बच्ची से कुछ बात चीत करने के अभिप्राय से उसने कहा कि मैं 'नाम' खरीदना चाहता हूँ। बच्ची मुसकराई और बोली, "यह तो बड़ी ही सहज बात है, मैं तुम्हें 'नाम' दे सकती हूँ"। उसने कहा, "बहुत खूब, मैं ठहरा हूँ"। वह दरवाज़े पर ठहरा रहा और बच्ची भीतर गई। वह बड़ी देर तक राह देखता रहा किन्तु बच्ची न बाहर आई, और वह धीरज हारने ही को था, क्योंकि बीस मिनट उसे राह देखते हो गए थे। उसने सोचा कि इतना समय निधि (हार) को ज़मीन से खोद कर बाहर निकालने के लिए बहुत काफी है। धीरज छोड़ कर उसने घर में झाँका और देखा कि बच्ची अपनी बड़ी छुरी पर सान धर रही है। उसने कहा, "इसके क्या माने"? और लड़की से उसने कहा "बच्ची, तू बच्चों की लीला क्यों कर रही है? मेरे पद के भद्रपुरुष से खेल-वाड़ करने का यह अवसर नहीं है। मुझे बेवकूफ न बना, तुम्हारे निकम्मे कामों के करने का यह समय नहीं है। बाहर आओ और हो तो कहो कि तुम जानती हो कि तुम्हारे

माता-पिता ने आभूषण को कहां गाड़ा है, किन्तु बच्ची ने पुकार कर कहा, "मुझे मेहरबानी करके माफ कीजिए, धीरज धरिए और एक मिनट ठहरिए, मैं आती हूँ"। उसने कहा "तो फिर सीधी चली आ, वह छूरी पैनाने की क्या ज़रूरत है?" उसने कहा, "क्या तुम 'नाम' नहीं लेना चाहते?" उसने कहा, "मैं नाम चाहता हूँ, पर मुझे वह दिखाओ तो ताकि मैं उसे किसी कोठीवाले के पास या उनके पास लेजाऊं जो वस्तु के ठीक दाम लगा सकते हैं। तब उस (बच्ची) ने कहा, "हमारा नाम ऐसी वस्तु नहीं है जिसके दाम कोठीवालों या बाज़ार के जौहरियों से लगवाने की ज़रूरत हो। हमारे बहुमूल्य (अमूल्य) नाम का मूल्य पहले ही से स्थिर है। उसमें घटने या बढ़ने का कोई काम नहीं है। मूल्य पहले ही से स्थिर है और क़ीमत पहले ही से निश्चित है"। उसने कहा, "सचमुच? तो फिर कृपाकरके आओ, मुझे वह दिखलाओ, अपना चाकू अलग फेंक दो"। उसने कहा, "अरे! किन्तु पहले तुम्हें कीमत देना होगी और बाद को तुम्हें नाम मिल सकता है"। उसने कहा "क्या मुझे चाकू मारने का तुम्हारा इरादा है, तुम अपना छुरा क्यों पैना रही हो?" उसने अत्यन्त विश्वासपूर्ण और शुद्ध भावसे कहा, "यदि तुम नाम की कीमत नहीं जानते थे तो तुम यहां क्यों आये? क्या तुम नहीं जानते कि नाम पाने के लिए तुम्हें अपना जीवन देना होगा? नाम की कीमत ज़िन्दगी है जो तुम्हें देनी होगी। जो अपने जीवन को बचावेगा वह नाम को खोवेगा।"

अरबी भाषा में एक पद्य है "मू तू किबलंतु मू तू"। जिसका अर्थ है-"कब्र में रक्खे जाने के पहले तुम मर जाओ, और ऐसा करके इस जगत को स्वर्ग बना दो"। संस्कृत में

बहुतेरे पद्यों की रचना हुई है जो इसी तथ्य का वर्णन करते हैं।

जब तुम्हारी सारी सत्ता दुनिया से फिर जाती है, जब तुम कष्ट सह चुकते हो, जब तुम सूली पर लटक चुकते और दुनिया के लिये मर जाते हो, तब तुम जीते हो। किन्तु उपदेशकों और शिक्षकों की उक्तियों से धोका न खाना। राम तुम से सत्य कहता है, वह ( मिथ्या प्रशंसा ) नहीं करता। वेदों में एक सुन्दर संस्कृत पद्य है, जिस का अर्थ है:—

मनुष्य की देह एक गढ़ के तुल्य है और इन्द्रियाँ छिद्र हैं। गढ़ के छिद्रों में हम तोप और बन्दूकें धरते हैं, जो भीतर से दागी जाती हैं और जो बाहर दागती हैं। इसी प्रकार, तुम दृष्टि के तोप के गोले दर्शकों के दिलों में और सिरों पर दागते हो, कान के छिद्रों से विचार बाहर दागते हो। अच्छा, वह (पद्य) कहता है इस गढ़ के निर्माता या रचयिता आत्मा नें मनुष्य से बड़ा ही रंगीला ठट्ठा किया है। तोप के सब गोले तुम्हारे भीतर से बाहर दगते हैं, और मनुष्य भौंचका जाता है। मनुष्य समझता है कि मुझे लाभ हो रहा है, और इस दुनिया को जीत रहा हूँ। मनुष्य समझता है कि वह अपनी सम्पत्ति बढ़ा रहा है। किन्तु वास्तव में वह अपने आप को खो रहा है। इस गढ़ में मनुष्य समझता है कि वह ज्ञान लाभ कर रहा है, वह दुनिया में विजयी है, किन्तु वास्तव में वह अपनी सच्ची आत्मा को भूखों मार रहा है। यहाँ पर पद्य कहता है, "वह सम्पूर्ण दुनिया को जीतता है, जो अपनी तोप और बन्दूकों के मुँह फेर कर भीतर की ओर दाग सकता है, जिसके नेत्र बाहर की ओर देखने के बदले भीतर या अन्दर को देखते हैं और दृष्टि के मूल को देखते हैं, जिस के कान पीछे की ओर मुड़ सकते हैं

और सुनने की सच्ची जड़ आत्मा, सुनने की मूल और शक्ति को सुनते हैं, जिसका मन अपनी कर्मण्यता के मूल स्रोत की ओर दृष्टि फेर और देख सकता है।

'भीतर देखो! वह कौन है जो नेत्रों को दिखाता (देखने की शक्ति देना) है, कानों को सुनाना, बालों को बढ़ाता है? वह है आत्मा, परमेश्वर। यह कैसी सहज बात है। यदि इस सत्य पर एक क्षण भी विचार करने की तुम परवाह करो, तो तुम देख सकते हो कि तुम ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं हो। उस परमेश्वर को भीतर अनुभव करो, और विश्व के स्वामी, संचालक, सम्राट हो जाओ।' किन्तु यह ज़िन्दगी बूढ़ी हो जाती है और तब मौत आती है। बीज को बढ़ने के लिये तैयार रहना चाहिए। दीपक को जगमगाने के लिए जलना चाहिए। इसी तरह परमेश्वर की भाँति रहने के लिए तुच्छ अहंकार,मिथ्या अहं बहिर्गामी प्रवृत्ति का रुकना या बंद होना ज़रूरी है। क्या यह हमें कहानी से अन्य ओर भटका देगा? लड़की ने कहा, 'जनाब, क्या आप जानते नहीं थे कि दाम पहले ही से निश्चित हैं? नाम पाने के लिए (लड़की के लिए नाम का अर्थ ईश्वर था, और मनुष्य के लिए, उसका अर्थ हार था) इस छुरी से तुम्हारा यह सिर काटना चाहिए। तब और केवल तब तुम नाम को पा सकते हो"। बेधड़क, सानन्द और बेखटके लड़की ने यह बात कही। बेचारा ग्राहक हक्का-बक्का हो गया और इतना ग़ुल मचाया कि सब पड़ोसी जमा होगये। उसने शिकायत शुरू की। उसने कहा, "देखिए, इस क्षुद्र झोंपड़े में कसाई और नर-घाती रहते हैं। मैं समझता हूँ कि इस लड़की के पिता-माता घोर नरघाती हैं। यह मामला अदालत के सामने जाना चाहिए, हमें पुलिस बुलाना चाहिए"। किन्तु लोगों ने कहा, "ऐसी बातें न करो,

लड़की के माता-पिता अपनी बड़ी धार्मिक वृत्ति इत्यादि के लिए विख्यात हैं"। उसने कहा, "मुझे जान पड़ता है कि वे सब पवित्र लोग सामान्यतः बड़े खराब हैं, वे धार्मिक नहीं हैं, धर्म के जामे की ओट में वे धार्मिक पाप करते हैं"। उनकी बात चीत में बड़ा गुल और गड़बड़ था। सहसा लड़की का पिता वहां पर आ पहुँचा और यह मनुष्य लड़की के बाप का गला घोंट देने को था। साधु पिता शान्त और गम्भीर था। अनोखे ग्राहक ने बड़ी ही कटु भाषा में उसे संबोधन करके कहा, "तुम अपनी बच्ची को भी ऐसे घोर पाप करना क्यों सिखाते हो, तुम नित्य ऐसे कृत्य क्यों करते हो जिनसे तुम्हारे बच्चे बचपन में ही नरघाती बन जाते हैं!" साधु ने जवाब दिया, "क्या बात है, जनाब, आपका अभिप्राय क्या है?" सारा मामला समझाया गया और साधु ने जब दास्तान सुनी, उसका हृदय भाव से भर गया, उसका सारा शरीर पवित्र विचारों से सनसनाने लगा, उसका जीवात्मा परमेश्वर भाव से परिपूर्ण होगया, बड़े दानों (मोतियों) के से अश्रु उसके कपोलों पर आगए और उसने कहा, "ऐ महात्माओं और सिद्धों, ऐ देवदूतों, परमेश्वर! क्या नौबत यहाँ तक पहुँच गई है! क्या मामले की हालत इतनी तुच्छ हो गई है, क्या उस जैसी बच्ची की शक्ति से ईश्वर का नाम (ऊँचे से यहाँ नीचे) उतारा जायगा, क्या इतनी छोटी चीज से वह बदला जायगा? अपनी लड़की की ओर संकेत करते हुए उसने कहा कि एक निर्दोष, अज्ञान बच्ची ने भगवान्, परमेश्वर को पा लिया है इसी से ईश्वर का नाम, परमेश्वर, इतना हँसने के योग्य सस्ता होगया है, इसी से ईश्वर का नाम, स्वर्ग और अमरत्व ऐसे घोर नीचे दामों पर बिक रहा है जैसे सिर या हृदय। ऐ परमेश्वर, ऐ मधुर अमरता! यदि

एक जीवन पर वह विके तो क्या मह्ँगा है ? उस सत्यता की एक झलक के लिए कोटियों पर कोटियों जीवनों की उत्पति और नाश होने दो। एक क्षण की पवित्र परमेश्वर भावना के लिए अगणित जीवनों और मूढ़ों को उतरने और टूक टूक होने दो।

जब महात्मा ने ये शब्द कहे तब अनोखे खरीदार का दिल गल गया और सब पास खड़े आश्चर्य-चकित होगए। तब उन्हें जान पड़ा कि वही शब्द 'नाम' छोटी लड़की और लड़की के पिता-माता के लिए कोई अनुपम मधुर अर्थ रखता है और हमारे मन भौतिक पदार्थों में इस कदर सने हुए (मूढ़) हैं कि सच्चे अर्थ नहीं ग्रहण करते।

यह कथा तुम्हें वह दाम बताती है जो स्वर्ग का मधुर अमृत चखने के लिए तुम्हें देना चाहिए। आत्मानुभव का स्थिर अनिवार्य मूल्य वह तुम्हें बताती है।

तुम दुनिया को नहीं भोग सकते, तुम अधम, तुच्छ, क्षुद्र, सांसारिक, शारीरिक गत इन्द्रिय-सुख की इच्छाओं में प्रवेश करने के साथ ही परमेश्वर-अनुभव का दावा नहीं कर सकते।

यह जवाहिरात की दुकान है, और इस रत्न, इस लक्ष्य, इस स्वर्ग की कीमत के मूल्य स्वरूप तुम्हें गर्दन और, अपनी अधम प्रकृति देनी होगी। यदि तुम मूल्य नहीं दे सकते, तो दूर हो जाओ। यदि तुम उस पूर्ण ज्ञान का आनन्द नहीं ले सकते, तो उस का एक मात्र कारण यही है कि तुम मूल्य नहीं देते। इसलिए तुम मूल्य दो, और उसी क्षण तुम्हें उस परमानन्द का अनुभव होगा।

एक मनुष्य गिर पड़ा। उसके पैरों में चोट आ गई। वह गुरुत्वाकर्षण (gravity) को दोष देनेलगा और चिल्लाया

"गुरुत्वाकर्षण के ऐ अधम नियम, तुमने मुझे गिराया" अच्छा, गुरुत्वाकर्षण का नियम निकाल बाहर किया जाने की अपेक्षा लाखों मनुष्यों का गिरना और उनके पैर टूटना बेहतर है। गुरुत्वाकर्षण से न लड़ो, सावधानी से अपने पग धरो फिर तुम न गिरोगे। तुम्हारे सब गिराव, तुम्हारी सब चोटें, तुम्हारे सब आघात, तुम्हारी सब चिन्तायें और क्लेश तुम्हारे भीतर की किसी दुर्बलता के कारण हैं। उसे दूर करो और परिस्थितियों से न भिड़ो, अपने संगी मनुष्यों को न दोष दो, दूसरों के कंधों पर कलंक न थोपो, किन्तु अपनी दुर्बलता को दूर करो। मन में समझे रहो कि जो कुछ भी तुम गिरते पड़ते या तकलीफ भोगते अथवा क्लेश पाते हो, वह तुम्हारे भीतर की किसी न किसी दुर्बलता के कारण है। इसे याद करो और गुरुत्वाकर्षण से न लड़ो।

भीतर यह कौन दुर्बलता है ? यह है अविद्या की अँधियारी कालिख जिस के कारण तुम अपने को देह, और इन्द्रियाँ समझते हो। इससे पीछा छुटाओ, इसे दूर करो, और तब स्वयं शक्ति स्वरूप तुम हो जाते हो। तुम्हें अपनी प्लीहा ( spleen ) या यकृत ( liver ) का कब बोध होता है ? जब वह कुछ गड़बड़ होती है, तभी तुम्हें प्लीहा या यकृत का बोध होता है। तुम्हें अपने फेफड़ों का बोध कब होता है ? जब वे बिगड़ जाते हैं तभी तुम्हें फेफड़ों का बोध होता है। जब नाक ठीक होती है तब तुम उसे नहीं महसूस करते।

इसी तरह, जब तुम ( अपने को ) देह भान (बोध) करते हो, तब जान पड़ता है कि कोई रोग है। पूर्ण स्वस्थता की दशा में तुम अपने को दिलेर और बलिष्ट बोध करते हो, तुम्हें व्यक्तित्व या देह का बोध नहीं होता, तब तुम इस प्रवंचना (mockery), इस तुच्छ देहात्मभाव से परे होगे,

इस क्षुद्र शरीर के अंधविश्वास से तुम ऊपर होंगे, तुम्हारे लिए अखिल संसार तुम्हारा शरीर होगा। और जिस क्षण तुम उस दशा में होते हो, परमानन्द तुम्हारा है, और तुम्हें इस या उस के लिए कदापि किसी अभिलाषा का बोध न होगा। इस दुर्बलता के कारण तुम बराबर ठोकर खाते हो। यह दुर्बलता, यह अविद्या तुम्हें अपने आप को शरीर भान (बोध) कराती है।

एक महात्मा से यह सवाल किया गया था, "यह क्या बात है कि जब ईसा को सूली हुई तब उसे सूली की वेदना नहीं हुई?" उस समय महात्मा के आस-पास कुछ नारियल थे। भारतवर्ष में लोग मित्रों या महात्माओं से मिलने जाते हैं तो सदा फल लेजाते हैं और ये नारियल महात्मा के पास लाये गये थे। एक नारियल कच्चा था और दूसरा सूखा हुआ था। महात्मा ने कहा, "यह नारियल कच्चा है। अब यदि मैं इसका खोपड़ा तोड़ूँ तो गूदे का क्या हाल होगा?" उन्हों ने कहा, "गूदा भी कट या टूट जायगा, उसे हानि पहुँचेगी"। साधु ने कहा, "अच्छा, यह सूखा नारियल है, और यदि मैं यह खोपड़ी तोड़ डालूँ तो गूदे को क्या होगा?" उन्हों ने कहा, "यदि इस नारियल का खोपड़ा तोड़ डाला जाय तो गूदे को कोई हानि न पहुँचेगी, वह बेचोट रहेगा"। उसने कहा, "क्यों?" उन्हों ने कहा, "सूखे नारियल में गूदा खोपड़े से अलग होजाता है और कच्चे नारियल में गूदा खोपड़े में लगा रहता है"। तब महात्मा ने कहा "जब ईसा को सूली दी गई थी, तब किस को सूली मिली?" उन्हों ने कहा, "शरीर को"। महात्मा ने कहा, "अच्छा, यह एक मनुष्य था जिसके शरीर या बाहरी खोल को हानि पहुँचाई या सूली दीगई, किन्तु यह एक मनुष्य था जिसने निर्विकार

आत्मा, सच्चे गूदे को बाहरी खोल से अलग कर लिया था। बाहरी छिलका टूट गया था, किन्तु भीतर का अखंड (अभेद्य) था, इस लिये रंज काहे का, इसके लिये क्यों रोया और चिल्लाया जाय? दूसरे लोगों की कच्चे नारियल की सी गति होती है जिसमें गिरी खोपड़े से चिपटी रहती है और इस लिए जब खोपड़े या शरीर में विघ्न पड़ता है, तब गिरी या भीतर में उद्वेग होता है। और यही भेद है।

छिलके से यह आसक्ति यह अनुरक्ति, छिलके की यह गुलामी ही तुममें कमज़ोरी या रोग है। इस तरह, इस आसक्ति (देहाध्यास) का, छिलके की इस गुलामी का त्याग सांसारिक लोगों के दृष्टिकोण से मृत्यु है। तुम्हारी वर्तमान दृष्टि से वह मृत्यु है, और जबतक तुम इस मृत्यु को नहीं भोगोगे तथा छिलके और छिलके के सरोकारों से अपने को अलग नहीं कर लोगे, तब तक तुम मृत्यु को नहीं जीत सकते, तुम चिन्ता, बदनसीबी, रोग या पीड़ा से ऊपर नहीं उठ सकते। शरीर को ऐसा हो जाने दो कि मानो कभी उसका अस्तित्व ही नहीं था। मुक्त मनुष्य, स्वाधीन नर है जो परमेश्वर में, परमेश्वरत्व में इस तरह पर रहता है कि मानो शरीर पैदा ही नहीं हुआ था।

राम ने यह वचन अनेक बार सुना है, "मैं चाहता हूँ कि मेरा कभी जन्म न हुआ होता"। डीन स्विफ्ट (Dean Swift) जाब ( Job पुस्तक ) का यह वाक्य पढ़ा करता था, "वह दिन नष्ट होजाय जिसको मैं पैदा हुआ था"। राम कहता है, "भाई, जिस दिन तुम पैदा हुए थे, उसको नष्ट करने का यह उपाय नहीं है। शरीर को, इच्छाओं को नष्ट करो, और इस दर्जे तक ईश्वर-भावना में निवास करो कि तुम्हारे लिए तुम्हारे जन्म का कोई दिन ही न रहे, मानों कभी कोई शरीर था ही

नहीं, मानो शरीर का कभी जन्म ही नहीं हुआ था। जब तुम गाढ़ निद्रा अवस्था में प्रवेश करते हो, तब जिस तरह जागृत अवस्था के सब अनुभव गायब हो जाते हैं, वे भूल जाते हैं, उसी तरह इस दर्जे तक ईश्वर-भावना में चढ़ो कि तुम्हारे पिछले सम्बन्ध तुम्हारे लिए पूरे शून्य होजाँय। इस तरह तुम्हें गिरी को छिलके से अलग करना है, तब तुम मृत्यु को जीत सकोगे।

आत्मानुभव का अर्थ तुम्हारे पुराने गीतों को इस नए स्वर में बैठाना है। पुराने गीत वही बने रहेंगे, किन्तु उन सब को तुम्हें बिलकुल नए स्वर में उतारना होगा। तुम्हें नितान्त नवीन स्थिति-विन्दु (दृष्टि) से संसार को देखना होगा। तुम दो स्थिति-विन्दुओं (दृष्टियों) को मिला नहीं सकते। यह नहीं हो सकता कि किसी को तो तुम सांसारिक स्थिति विन्दु (दृष्टि) से देख सको और किसी दूसरे को नवीन स्थिति-विन्दु से विचारो। अपना स्थिति-विन्दु बिलकुल बदल जाने दो, हरेक वस्तु को परमेश्वर, ईश्वर की तरह देखो। दुनिया से तुम्हारा नाता वही होना चाहिए जो परमेश्वर का दुनिया से है। पूर्ण परिवर्तन। कुछ कहानियों से इस का दृष्टान्त दिया जायगा।

एक समय एक सभा में, जहां हम सब को ईश्वर-भावना ( God-consciousness ) थी, एक मनुष्य आया। घुसने पर उसने रोना और चिल्लाना तथा अपनी छाती पीटना शुरू किया। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। वह राम के पुत्र की मृत्यु पर रो रहा था, और यह लड़का इस मनुष्य का सम्बन्धी था। अच्छा, किसी ने उस की ओर ध्यान नहीं दिया, वह बैठ गया। तब चुपके से, शान्ति पूर्वक, साफ तौरपर, उसकी चिन्ता दूर करने और उसे ढाढ़स

देने के लिए उस से पूछा गया। उस ने कहा अपने इस सम्बन्धी ( राम का पुत्र ) की मृत्यु मेरे लिए असह्य है। उपस्थित मंडली में से किसी ने भी विलाप नहीं किया और न उद्वेग के कोई लक्षण प्रकट किए, क्योंकि वहां तो परमेश्वर-भावना थी ; वहाँ तो वह दशा थी जहाँ संसार की हरेक वस्तु परमेश्वर के स्थिति-बिन्दु ( अर्थात् ब्रह्म दृष्टि ) से देखी जाती थी ; वहाँ तो वह दशा थी जिस में पुराने गीत परमेश्वर के नए संगीत में भर लिए गये थे। जो शब्द या वाक्य उस समय मुख से निकले वे निम्न लिखित थे :—"अरे भाई ! तुम सम्बन्धी हो, यह तथ्य वैसा ही है जैसे कोई आ कर कहे 'अजी जनाब, हवा चल रही है' ; किन्तु भइया ! हवा चलती है तो क्या हुआ, इस में अस्वाभाविक कौन सी बात है जो हम गड़बड़ा जाँय अथवा 'अजी जनाब ! नदी बह रही है' नदी बहती है है तो क्या हुआ, यह तो स्वाभाविक है, हम इससे उलट-पुलट (दरहम बरहम) क्यों हों ; नदी बहती है,यह स्वाभाविक है। इन कथनों में कुछ भी असाधारण या विलक्षण कथन नहीं है। इसी प्रकार, जब आप आ कर कहते हैं कि तुम्हारा पुत्र मर गया तो इसमें कोई असाधारणता नहीं है, यह तो अत्यन्त स्वाभाविक है ; हरेक जो पैदा हुआ है, वह मरने को पैदा हुआ है। जब तुम विश्व विद्यालय में प्रवेश करते हो, तो केवल थोड़े समय तक ठहरने के लिए प्रवेश करते हो या सदा के लिए अपना घर बनाने को ? क्या तुम परीक्षा देते और वहाँ अपने सारे जीवन भर नवागत ( Sophomore) विद्यार्थी की तरह रहते हो ? जब तुम नव छात्र-श्रेणी में प्रवेश करते हो, तब यही इरादा रहता है कि एक दिन तुम उस श्रेणी को छोड़ोगे और ( Sophomore )

अर्थात् उस से बढ़कर दूसरी श्रेणी में चढ़ोगे, इत्यादि।

जब तुम किसी ज़ीने में घुसते हो, तब यह समझा होता है कि तुम्हें सदा वहाँ नहीं रहना है, किन्तु थोड़े समय के बाद सीढ़ी छोड़ देना है।

जब तुम्हारा पुनर्जन्म होता है, तब क्या यह समझा नहीं रहता कि तुम्हें उस पुनर्जन्म या गत जीवन को छोड़ना होगा।

इसी तरह जब तुम इस शरीर में प्रवेश करते हो, यह मालूम रहता है कि तुम इस शरीर को छोड़ोगे। इस लिए यदि वह लड़का, जिसे तुम राम का लड़का कहते हो, मर गया है तो वह बिलकुल स्वाभाविक है इसमें कुछ भी अनोखी या विचित्र बात नहीं है। यह अद्भुत नहीं है, इससे तुम्हें व्यग्र वा विस्मित न होना चाहिए, यह तो इस कहने के समान है कि आज तुमने अपने नख कटवाये थे। यदि पुत्र मर गया है, बिलकुल ठीक है, इसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है।

अपने सांसारिक रिश्तों की ओर देखने का यह तरीक़ा है, और इस तरह अपने को स्वाधीन रक्खो। सच्चे आत्मा, परमेश्वर, राम, को अपना घर बना कर तत्त्व की दृष्टि से देखो, और अपने सब परिचितों, सम्बन्धियों, तथा नातेदारों को उस श्रेष्ठ स्थल वा उच्चपद से देखो। जिस तरह लिक-वेधशाला ( Lick Observatory ) से लोग सांसारिक घटना को देखते हैं, उसी तरह अपनी आत्मा की लिक-वेधशाला से ब्रह्मज्ञान के दूरदर्शक यंत्र द्वारा इस दुनिया को देखो और तुम देखोगे कि परमेश्वर, देवों के देव, प्रकाशों के प्रकाश, सत्य स्वरूप तुम हो। वही मैं हूँ। शरीर नहीं, मन नहीं, यह क्षुद्र, मिथ्या, लालसी अहं नहीं, किन्तु परमेश्वर मैं हूं। ऐसा भान करो, और यह बोध करो, यह अनुभव

करो। अनुभव करो कि तुम परमेश्वर हो। यही एक आवश्यक बात है। इस की मुझे क्या परवाह है, या तुम्हें क्या परवाह है अथवा किसी को क्या परवाह है यदि यह देह मैले-कुचैले झोंपड़े में है। इस परमेश्वर-भावना को क़ायम रक्खो, और जहाँ कहीं तुम हो, वही स्थान स्वर्ग में बदल जाता है। यदि तुम्हारे इस शरीर को पीड़ित किया जाता है, तो तुम्हें परवाह करनेकी क्या ज़रूरत है। ईश्वर-भावना (या ब्रह्म-दृष्टि) को अपने साथ होने दो, फिर दुनिया की सब निधियां तुम्हारी हैं, विश्व की सब निधियां तुम्हारी हैं। केवल इसे अपने पास रक्खो और दूसरी हरेक चीज़ फेंक दो।

एक बार एक मनुष्य आ कर राम से बोला, "ऐ महाराज, एक बड़े राजा आप के दर्शन करने आ रहे हैं"। अब यह एक महत्त्व पूर्ण बात है। राम अब एक बेढ़े विषय पर कहने वाला है, साधारणतः मित्रों की इन प्रशंसात्मक, फुलाने वाली उक्तियों से लोग प्रभावित होते हैं। अच्छा, मनुष्य ने कहा, "यह एक बड़ा धनी पुरुष आपके दर्शन करने को आ रहा है"। वहां राम हरेक वस्तु को परमेश्वर के स्थिति-बिन्दु से (अर्थात् ईश्वर-दृष्टि से) देख रहा था, और ये शब्द राम के मुख से निकले, "राम से क्या प्रयोजन"? मनुष्य ने कहा, "अजी महाराज, वह ऐसी सुन्दर, उज्ज्वल, मूल्यवान वस्तुएँ आप के पास लाने को मोल लेने जा रहा है"। राम ने कहा, "मुझे इस से क्या?" "एक राजा मेरे लिए क्या चीज़ है? मुझे तो केवल तत्त्व दृष्टि रखने दो। छोटी २ बातें और लघुवृत्तियां, ये असत्य व्यापार मेरे लिए कुछ भी रोचक नहीं हैं। मेरा सत्य, मेरा परमेश्वर, मेरा आनन्द, मेरा आत्मा मुझे सोद्योग (प्रवृत्त, busy) रखने को काफी है। ये व्यर्थ की बातें, ये तुच्छ, सांसारिक वस्तुएँ मुझ से कोई सरोकार

नहीं रखतीं। यह राजा या ये धनी लोग राम के शरीर के पास आते हैं, और यदि राम की रुचि इन शरीरों में हो जायगी तो यह सचमुच शंका का स्थल हो जायगा। किन्तु जब दृष्टि कोण बदल गया है और जब पुराने गीत नए संगीत में बांधे गये हैं, जब उच्चतम स्थिति-विन्दु से अवलोकन किया जाता है, तो फिर कोई राजा या नगर-नेता, अथवा एक सम्राट मुझ में कौन रुचि उद्दीप्त कर सकता है? कोई भी नहीं। इस लिए स्थिति-विन्दु (दृष्टि कोण) बदलने दो। जब समाचार पत्रोंमें तुम्हारे लिए कोई आकर्षण नहीं रह जायगा, जब उन में तुम्हारी रुचि का अन्त हो जायगा, तब उस दिन तुम शरीर से ऊपर उठ जाओगे, और ईश्वर के निकट आ जाओगे। इस सत्य को अपने व्यवहार में लागू करने का यह एक उपाय तुम्हें मिला है। जब यह सूली प्राप्त करली जायगी, तब सच्चा जीवन तुम में इन मार्गों से स्पष्ट होगा।

यह कथाएँ इस लिए नहीं कही जातीं कि तुम केवल इनकी नक़ल करो। नहीं, नहीं। परमेश्वर को अपने भीतर अनुभव करो, अनुभव करो कि तुम परमेश्वर हो। यह अनुभव करो और (इस प्रकार) सब प्रलोभन, भय, और चिन्ता से ऊपर उठो।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

# क्या समाज विशेष की आवश्यकता है ?

गोल्डन गेट हाल, सैन फ्रांसिस्को, २१ जनवरी १९०३।

**प्रश्न**—स्वामी के दिये हुए इन तत्त्वार्थों ( तत्त्वोपदेशों ) का अनुसरण करने के लिये क्या यह सर्वोत्तम न होगा कि हम अपना एक समाज स्थापित करें ?

**उत्तर**—जाति भेद और सम्प्रदायपन को तोड़ना राम का एक उद्देश्य है।

यह सत्य है कि सभा चलाकर या एक संस्था बना कर सत्य का पक्ष पुष्ट किया जा सकता है, किन्तु प्रायः हित की अपेक्षा हानि अधिक होती है।

यदि एक संघ या सभा बनाई जाय, तो वह अन्य सभाओं सरीखी न होनी चाहिए। राम कोई गुलामी, वेदान्त का कोई जुआ नहीं चाहता। तुम सब को किसी भी दूसरी सभा में उपस्थित होने की, सब नवागतों को सुनने की स्वाधीनता है। मेरे श्रद्धालु मेरे पास आ जायेंगे। यदि दूसरे वक्ताओं से तुम आकर्षित हो, यदि तुम्हारे लिए इस में या उसमें कुछ ( सार ) हो, तो उनके पास जाओ। प्रत्येक व्याख्याता राम है। कृष्ण मैं हूँ, मोहम्मद मैं हूँ। स्वच्छन्द उन्हें सुनो। राम नहीं चाहता कि तुम उस (राम) के गुलाम हो जाओ, प्रकाश को मत रोको। साथ ही राम चाहता है कि तुम इस सत्य से लाभ उठाओ*।

* टिप्पणी :—अमेरिका में सामान्य रीति है, विशेषतः हिन्दू और वेदान्ती उपदेशकों की- कि वे अपने श्रद्धालुओं और शिष्यों को

हिमालय की सफेद-सिर चोटियों के समान प्राचीन सत्य, सहस्रों वर्ष पूर्व गंगा-तट पर गाया हुआ सत्य वही है जो इमर्सन ( Emerson ), व्हिटमैन ( Whitman ), और अन्यों द्वारा सोचा-समझा गया था, वही सत्य जिसने उन्हें परमानन्द प्रदान किया था। आज कल्ह के समाजों और सभाओं द्वारा हज़ारों रूपों में उपस्थित किया जाने वाला वही सत्य अपने पूर्ण रूप या खंडों में प्राप्त होता है; वही सत्य, जिसकी चर्चा तुम्हारे अख़बार और पत्रों में होती है, सुंदरता से उपस्थित किया जा सकता है। किन्तु सत्य बदला नहीं है। जैसा सहस्रों वर्ष पूर्व वह था वैसा ही आज भी है। किन्तु राम कहता है कि सत्य को बड़ी ही सुन्दरता से वह उपस्थित करता है, और यदि आप इन पुस्तकों को पढ़ें तो आप देखेंगे कि ये तत्त्वार्थ ( तत्त्वोपदेश ) राम द्वारा उज्ज्वलता पूर्वक विचित्रता से अंकित किये जाते हैं। कुछ लोगों को राम की वाग्मिता ( oratory ) नहीं भाई, क्योंकि उसने उनकी रुचियों को नहीं पुचकारा और दुलारा। हां, राम यदि सत्य से सरके, और ऐसा स्वर ग्रहण करे कि जिस से तुम्हारी पसन्द की खुशामद और दुलार तथा तुष्टि हो, तो राम को सुनने के लिए अधिक संख्या में लोग जमा होंगे। किन्तु किसी व्यक्ति की रुचि का आदर करने के लिए राम सत्य की शिखरों से नहीं उतरा और न कभी उतरेगा।

ईसा ने केवल ग्यारह शिष्यों को उपदेश दिया था। किन्तु वायुमंडल ने उन शब्दों को संचित किया, आकाशों ने उन्हें जमा किया, और आज कोटियों मनुष्य उन्हें पढ़ते हैं।

---

दूसरे उपदेशकों और व्याख्यानों से कुछ ग्रहण करने की लालसा रखने से रोकने की चेष्टा करते हैं। इसी प्रथा की ओर गौण संकेत यहाँ पर जान पड़ता है।

धूल में मिलाया हुआ गन्ध फिर उठेगा।

हो सकता है कि इस विचार को अनेक लोग प्रकट कर रहे हों, किन्तु आज कलह के समाचार पत्र जिसका प्रतिपादन कर रहे हैं, उसी विचार को उपस्थित करने का राम का यह ढंग किसी आवश्यकता की पूर्ति करेगा और कुछ हित करेगा। कुछ का इस ढंग से उपकार होगा, और दूसरों का दूसरे ढंगों से लाभ होगा। परन्तु फिर भी लाखों मनुष्यों को राम के ढंग से बड़ा लाभ होगा। राम कहता है कि यदि तुम्हारा इस में अनुराग है तो इसे ले लो, इसे पढ़ाओ और इसे हाथों हाथ दे कर और सबको पहुँचाओ। यदि राम के चले जाने पर तुम कोई सभा संगठित करो तो स्वामी की रचनाएँ (पुस्तकों) ले लो, इमर्सन, व्हिटमैन, थोरो, और सब दूसरों की रचनाएँ ले लो। ऐसी सभा बनाओ जो किसी नाम से बँधी न हो, जिसका उद्देश्य हो सत्य की वास्तविक पढ़ती। और यदि उस सभा में कोई ऐसा हो जिसके पास कुछ मौलिक ( original ) हो, अथवा अध्ययन करने या पढ़ने में कुछ उपयोगी बातें जिनके ध्यान में आई हों, वे सभा के सामने वे बातें रख सकें जिस से सब का हित हो। निजी ध्यान में यदि कुछ नये विचार किन्हीं सदस्यों को सूझ पड़ें, तो वे उनकी सूचना दें। किन्तु यह सब स्वाभाविक तौर पर हो, नियमों आदि के अनुसार नहीं।

यह एक सीटी है जो बजाई जाने पर कोकिल की आवाज़ देती है। हम जब चाहें इसे बजा सकते हैं और कोकिल की ध्वनि पा सकते हैं, किन्तु ध्वनि स्वाभाविक नहीं है। कोकिल का स्वाभाविक गान देश काल या नियम से नहीं बँध सकता। जब उसका जी चाहेगा तब कोकिल गावेगी, न कि जब तुम उसके पास पहुँचो और कहो, "ऐ कोकिल, गा"। सो तुम

देखोगे कि बोलने या व्याख्यान देने का निर्दिष्ट समय शर्तें लादता है ( नियमों में बांधता है ), और अत्युत्तम परिणाम नहीं हाथ लगते ।

मकान के किराये के लिए, रुपया तथा और भी धन पाने के लिए निर्दिष्ट नियमों की आवश्यकता है, किन्तु ये सब नियम सत्यका खून करते हैं। यह है चांदीके तीस टुकड़ों पर सत्यके ईसा को बेचना ।

राम तुमसे कहता है कि यदि तुम सभा रचना चाहते हो, तो उसे स्वाभाविक क्रम पर बनाओ और वर्तमान सभाओं की नक़ल न तैयार करो। होसकता है कि यह अपने ढंग की अनोखी हो ।

ईसाई सम्प्रदाय का गिर्जा खुदही भारी भूल है। यद्यपि उसने बड़ा हित किया है किन्तु अपने अनुयायियों के इर्द-गिर्द दीवारें खड़ी करके और ईसाई इंजील के सिवाय किसी दूसरे सूत्र से सत्य ग्रहण करने में उन्हें रोक कर उसने उसी हिसाब से हानि भी की है। इसी तरह बौद्ध, मुस्लिम और अन्य बहुतेरी सम्प्रदाय स्वयं भयंकर भूलें हैं, क्योंकि वे अपने अनुयायियों को संकीर्ण सीमाओं में संकुचित कर देती हैं और किसी दूसरे स्रोत से सत्य प्राप्त करने में उन्हें रोकती हैं। तुम्हें उसी दरवाज़े या खिड़की से स्वर्ग पहुँचना होता है, किसी दूसरे से नहीं।

किसी भी दरवाज़े या खिड़की से तुम्हें आकाश की ओर देखने का अधिकार है, यहाँ तक कि तुम्हें घर छोड़ने, दरवाज़ा या खिड़की छोड़ने का भी अधिकार है, और खुले मैदान में सारे स्वर्ग का मज़ा लूट सकते हो। इस लिए राम चाहता है कि दूसरी सभाओं की तरह अस्वाभाविक विधि पर सभा की रचना न हो, अत्यन्त स्वाभाविक विधि पर उसकी

रचना की जाय। सदस्य किन्हीं रेखाओं से न बंधे। वे स्वाधीन हों। ऐसी सभा हो जिस में सदस्य, ठीक कोकिल की तरह, जब इच्छा करें अथवा जब प्रेरणाधीन हों, तब व्याख्यान दें। पर जब वह ( कोकिल ) गाने को विवश की जाती है, तब उसके गाने की सब माधुरी चौपट हो जाती है। अपने को बनावटी इच्छाओं का सा न बनाओ, कोकिल की ध्वनि की नक़ल न करो। नियमों और क़ानूनों से न बँधो। सत्य रेखाओं से नहीं बांधा जा सकता।

राम की सर्वोत्तम रचनाएँ हिमालयके गंभीर वनों में लिखी गई हैं, जहां कोई नहीं सुनता था। वहां राम वन के वृक्षों को गाकर सुनाता था, वनकी वायु ने ध्वनि को ले लिया और दूर दूर उसकी प्रतिध्वनि की। उन कृतियों ( लेखों ) का प्रचार होने लगा, किन्तु राम जब कभी किसी सभा के सामने बोलने को लाचार किया गया और नियमों तथा विधियों के अनुसार बोला, तब उस के प्रयत्नका परिणाम किसी काम का न हुआ। वह अस्वाभाविक था, और इस लिए सुन्दरता चली गई। कभी कभी जब केवल एक मनुष्य आप का श्रोता होता है,तब सत्य अधिक सुन्दरता और शान से आता है। सत्य श्रोताओं की कम या अधिक संख्या की परवाह नहीं करता। भावना को ग्रहण करलो और धीरे धीरे सारा संसार सुनेगा।

तुम किसी समाज के क्यों हो जाओ ? समाज तुम्हारा है। यह लो ! तुम एक बार में बहुत कम हवा अपने फेफड़ों में श्वास से लेते हो, और तथापि दुनिया की सारी हवा तुम्हारी है। इस दुनिया की सारी हवा के तुम उत्तराधिकारी हो। सारा वायुमण्डल तुम्हारा है, सम्पूर्ण वायुमंडल तुम सांस से खींच सकते हो। भारत, जापान, चीन, इंग्लैंड,

अमेरिका की हवा राम की है और राम तुम भी हो। हिमालय की पवन अपनी मधुर सुगन्ध के सहित तुम्हारी है। हवा पर किसी का मालिकाना अधिकार नहीं है। इसी तरह सत्य या ज्ञान पर किसीका मालिकाना अधिकार नहीं है। दुनिया का सम्पूर्ण धर्म, जगत का सम्पूर्ण सत्य तुम्हारा है।

जब तुम सांस लो, तब इस विचार पर सोचो और इस कल्पना को अनुभव करो कि, जिस तरह यह देह सारे संसार की हवा की सांस ले रही है, उसी तरह मन सारे संसार के सत्य का वारिस (अधिकारी) है।

सारे संसार के तत्त्व का साँस लो, उसे सब स्रोतों से—इमर्सन ( Emerson ) व्हिटमैन ( whitman ) और दूसरों से, उपनिषदों, गीता और सब से—बटोरो। वे ( सब स्रोत ) तुम्हारे हैं। उन्हें अपना समझो।

जब तुम कोई पुस्तक पढ़ने को लो, लेखक ( ग्रन्थकार ) को न देखो। ग्रन्थकार के नाम के बिना रची हुई, उपनिषदों की सी पुस्तकें प्रकाशित होने दो।

उपनिषद्-कारों ने दुनिया को अपने ये विचार देने का कोई श्रेय अपने पर नहीं लिया। भारत के सर्व श्रेष्ठ ग्रंथ, षट्दर्शनों में कहीं भी रचयिता का नाम नहीं है। उस सर्वाधिकार रक्षक वृत्ति से शून्य, इस प्रभुताशील अहं से मुक्त, और "मैं सत्य हूँ" की वृत्ति से परिपूर्ण, निष्पक्ष हो कर ग्रंथकार अपना काम करता है। "मैं सत्य हूँ", यह अनुभव करना ही मेरे लिए यथेष्ट आनन्द है। "मैं ने सौ पुस्तकें लिखीं, मैं ५० लाख का धनी हूँ", इस विचार में क्या सुख रक्खा है। सच्चा सुख मेरे पास यह अनुभव करने से आता है कि "मैं सम्पूर्ण हूँ, परम सत्य हूँ, प्रतापी, अविनाशी आत्मा हूँ, तत्त्व स्वरूप हूँ", वह सुख तुम्हारे सब सांसारिक

व्यक्तिगत सुखों और हर्षों को तुच्छ बना देता है।

इस लिए सांस लो और जब तुम सांस लो तब यह भान और अनुभव करो कि संसार की हरेक वस्तु तुम्हारी है। अनुभव करो कि समग्र संसार की वायु तुम्हारी है, समग्र संसार की सम्पूर्ण सुन्दरता और प्रेम तुम्हारा है, ठीक जैसे फेफड़ों में गुज़रती हुई हवा तुम्हारी है, जैसे तुम्हारी नसों का हरेक बूँद-खून,प्रत्येक छिद्र ( cell ) का है। तुम्हारी देहका प्रत्येक विद्युत्घट (cell) तुम्हारी देहके हरेक बूँद-रुधिर का मालिक है। इसी प्रकार जब तुम इस विचार का सांस लो, तब अनुभव करो कि सम्पूर्ण ज्ञान, शक्ति, सत्य, सुख, सब सिद्धान्त, सब मत, कृष्ण, मोहम्मद, राम, ईसा, सब तुम्हारे हैं। इस क्षण तुम्हारे द्वारा जो कुछ बह रहा है, केवल उसी को अपने अन्तर्गत का न समझो।

अब विषादों या इस उदासी की दशा से अपने आप को चंगा करने के उपाय पर कुछ कहा जायगा। औषधि बहुत सादी है। और इतनी सादी तथा सहज होने ही के कारण लोग इसकी उपेक्षा करते हैं।

अनुभव ने यह बताया है, और ये सब महा पुरुष जान बूझ कर या अनजाने उसी उपाय पर आकर रुकते हैं जो राम तुम्हारे सामने रखता है। जब तुम इस का प्रयोग करोगे, तब इस के प्रभाव तुम्हें चकित कर देंगे।

कमरे में बैठे हुए यदि तुम उदास हो, यदि तुम्हें थकावट भान हो, अथवा तुच्छ स्वार्थ पूर्ण या कोई दुष्ट विचार, मन्द कल्पना, या द्वेष का भाव, अथवा नीच-स्वभाव, अनुचित अनुराग पैदा हो जाय, तो मन में ध्यान करो कि शरीर की स्वस्थ अवस्था में ये विचार हमारे पास नहीं फटक सकते, याद रक्खो कि पेट में कुछ गड़बड़ है।

जब कोई मनुष्य राम के पास आता है और अनुचित भाषा का व्यवहार शुरु करता है या उसका स्वर तीखा होता है, तो राम उसे कदापि दोष नहीं देता, न वैसे ही स्वर में उसे वह उत्तर देता है। जब कोई मनुष्य तुम्हारे विरुद्ध द्वेष, कटाक्ष, या अप्रसन्नता के लक्षण प्रकट करे, तब तुम उस पर रहम खाओ और उसके पेट के आराम के लिये कोई दवा उसे दो। जब तुम स्वयं दुःख भोगते हो, तब तुम्हें क्या करना चाहिए? क्या तुम्हें बाहरी दवा लेनी चाहिये। अरे नहीं। ये बाहरी औषधियाँ ठीक औषधियाँ न होंगी, असर टिकाऊ (स्थिर) न होगा।

सुस्ती की हालत में जब आप अपने को समझो तब, राम की सलाह है, अपना आलस्य त्याग दो, अपनी पुस्तक अलग हटा दो, पगों से काम लो, खुली हवा में चले जाओ, और तेज़ी से चलो। स्वभावतः तुम्हारी श्वास दीर्घ हो जाती है। स्वभावतः ऐसी साँस चलेगी और वह तुम्हें शक्ति से प्रफुल्लित कर देगी, और सारी उदासी जाती रहेगी। वह ठंडी हवा तुम्हारे मुख पर लग कर एक अद्भुत प्रभाव पैदा करेगी। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि अधिक लोगों ने इसे नहीं वर्ता है।

लोगों ने प्राणायाम अथवा श्वास-नियंत्रण पर अनेक व्याख्यान दिये हैं, किन्तु राम का तरीक़ा उस के लिए अत्यन्त स्वाभाविक है। समुद्र तटपर अथवा कहीं अन्यत्र चलते समय राम की विधि से तुम्हारा प्राण ठीक क्रम पर आजायगा। खुली हवा में कमरे के बाहर टहलते रहना दूसरा उपाय है। मान लो कि तुम जल्दी २ नहीं किन्तु धीरे २ चलते हो, मान लो कि तुम जल्दी २ चलना अच्छा नहीं समझते और स्वतंत्रता की अपेक्षा वज़ादारी के अधिक

पाबन्द हो, अपनी भलाई से यदि तुम्हें लोकमत का अधिक ध्यान है, मान लो कि तब तुम मन्द मन्द चलते हो, तब तुम्हारी श्वास पेट के केवल ऊपरी भाग को भरती है और यथेष्ट गहराई तक नहीं आती, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी कोने या ऐसे स्थान में चुप चाप खड़े हो जाओ जहां किसी का ध्यान तुम पर न जाय, और मुख खोल कर भरपूर हवा खाओ। मुख से हवा पूर्ण भीतर खींचो और नथुनों से उसे बाहर निकालो। इस विधिका पूरे ज़ोर से अभ्यास किया जाना चाहिए, और आप देखेंगे कि कितनी अपूर्व प्रफुल्लता आपको इससे मिलती है।

राम आप को अत्यन्त स्वाभाविक प्राणायाम बताता है। श्वास लो, श्वास लो, श्वास लो। दीर्घ श्वास में वायु पेट का नीचे का भाग भरेगी और भीतरी सम्पूर्ण नली से भी गुज़रेगी। इस तरह से तुम तुरन्त विषाद से छूट जाओगे और तुम्हारी शक्तियाँ खूब चोखी हो जांयगी। श्वास लेते समय यह बोध करके कि, "मैं सारे संसार की वायु श्वास ले रहा हूँ, समग्र संसार का अखिल सौन्दर्य और प्रेम मेरा है", तुम मन की साधना भी कर सकते हो "दुनिया की सारी सुन्दरता, सारी दौलत मेरी है", इस विचार को दीर्घ श्वास के साथ बराबर जारी रक्खो,यह तुम्हें खुश कर देगी। ज़रा इसकी परीक्षा कीजिए, इतना सहज होते हुए भी इसके परिणाम अपूर्व हैं।

टहलने के बारे में लोग किसी दूसरे के साथ टहलना पसन्द करते हैं और किसी अनाड़ी कवि ने इसी आशय की कविता भी लिख डाली है :—

" Have a friend with whom to talk,
Some body with him to walk."

अर्थः—"बातचीत के लिए कोई दोस्त रक्खो,
कोई व्यक्ति साथ टहलने के लिए।"

राम कहता है कि यदि तुम चिन्ताशील नहीं हो, अथवा तुम आध्यात्मिक वृत्ति के नहीं हो, यदि मन को तुम किसी महान् या श्रेष्ठ काम में नहीं लगा सकते, तब तुम्हारे लिए किसी को अपने साथ रखना आवश्यक हो सकता है। अथवा मानलो कि तुम बड़े निर्बल हो, तब राम तुम्हें सलाह देता है कि किसी शिक्षक के साथ टहलने के अधिकार का लाभ उठाओ। उससे तुम्हारा कुछ हित होगा। किन्तु उन लोगों के साथ न घूमने जाओ जो तुम्हारा उत्थान या उत्कर्ष न करेंगे। उन लोगों के साथ न टहलो जो द्वेष, मत्सर, या वैर के अधम लोकों में तुम्हें लाते हैं। यदि तुम अकेले टहलो और यदि तुम चिन्तक हो, तो जब कोई भी आस-पास नहीं है, तब ॐ की जाप शुरू करने से अधिक हितकर तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं हो सकता। जब तुम चलो और ॐ उच्चारोगे, तब आप देखेंगे कि स्वयं वायुमंडल ही तुम्हें अनुप्राणित करेगा और आपमें अपूर्व तथा अद्भुत विचार जाग्रत होंगे।

लोग इस तथ्य से लाभ नहीं उठाते। यह बहुत साधारण सलाह जान पड़ती है किन्तु अभ्यास करने पर जो अपूर्व परिणाम निकलेंगे, वे तुम्हें चकित कर देंगे।

यह महान् और शक्तिशाली सागर है। इस महाशक्ति-शाली सागर में, एक बूंद जल के पीछे भी वही शक्ति है जो समुद्र की लहर के पीछे, एक लहर के पीछे भी वही शक्ति है जो दूसरी के पीछे। हरेक बुल्ले की आत्मा शक्तिसागर है। हरेक तरंग का समर्थन वही अनन्त समुद्र करता है।

इस प्रकार अनुभव कीजिये, कृपया अनुभव कीजिये कि

यह भी, जिसे आप शरीर कहते हैं, यह छोटा नन्हा बूंद, लहर की तरह, उसी भाँति उसी शक्तिशाली समुद्रों के समुद्र से, जो सूर्यों और नक्षत्रों को उठाये रहता है उसीसे, पालित और पोषित होता है, बल और समर्थन पाता है।

तुम्हारा आत्मा सूर्य और नक्षत्रों का सहारा है, तुम्हारे रुधिर के हरेक बूंद का वह आत्मा है, सम्पूर्ण शरीर का वह आत्मा है, मूड़ का हरेक बाल सारी देह का आत्मा है।

तुम हो यह अनन्त आत्मा। तुम केवल इस शरीर का ही समर्थन और रक्षण नहीं करते, किन्तु तुम अखिल देश ( Space ) और अखिल काल ( Time ) के भी आत्मा हो। अब ध्यान दो, तुम वह आत्मा हो जो अखिल काल और देश को सहारा दे रहा है, तुम वह अनन्त आत्मा हो। अब देखिए यदि यह शरीर मृत्यु को प्राप्त हो, तो क्या उस आत्मा की मृत्यु होगी ?, नहीं। यदि शरीर मरे,तो आत्मा स्वयं तब तक नहीं मर सकता जब तक काल और देश है। अरे कैसा परम आश्चर्य है! मैं सम्पूर्ण देश का आत्मा हूँ, सम्पूर्ण नित्यता का आत्मा हूँ, निखिल काल का स्वयं आत्मा हूँ।

अकेले घूमने में, समुद्र तट पर या खुली हवा में टहलते हुये, इस विचार को अनुभव करो। जब अकेले खड़े हो, इस विचार को अनुभव करो। तुम स्वच्छन्दता पूर्वक ॐ चाहे न उच्चार सको, किन्तु ख्याल की धारणा करना ही भावना के द्वारा ॐ का उच्चारण है।

ॐ के बाहरी जाप पर तुम्हें अति अधिक ज़ोर देने की ज़रूरत नहीं है। किन्तु भावना के द्वारा तुम्हें अनुभव करना चाहिए कि, "मैं अखिल अनन्तता हूँ, सम्पूर्ण देश मैं हूँ, सब शरीर मुझ से भरे हैं, शत्रुओं या मित्रों की सब इच्छाएँ

मेरी हैं, समग्र इच्छाएँ मेरी हैं"।

यह एक मनुष्य है जिससे मुझे डाह है, जिसे मैं अपना प्रतियोगी ( रक़ीब ) समझता हूँ । अब समझो "वह प्रतिद्वंद्वी मैं हूँ"। सारी विलगता ( separateness ) त्याग दो, अनुभव करो कि यह क्षुद्र डाही स्वरूप तुम नहीं हो। मान लो कि तुम किसी को प्यार करते हो और तुम्हें मालूम होता है कि कोई दूसरा उसी को प्यार करता है, तब डाह का भाव आता है। इसे बढ़ने न दो। प्रेमपात्र तुम हो और जो दूसरा तुम्हारी हृदय-प्रतिमा को प्यार करता है, वह भी तुम्हीं हो, उसके हर्ष तुम्हारे हर्ष हैं, ( इस ) सत्य को अनुभव करो। सत्य को अनुभव करने के लिए तुम्हें अपने आप को सत्यरूप अनुभव करना चाहिए। समझो "मैं वह हूँ जिसके पास वह व्यक्ति पहुँचता है, कोई पृथकता नहीं है"। उस ( पृथकता ) से ऊपर उठो। बड़े और छोटे के इस विचार से पीछा छुटाओ। न कोई बड़ा है और न कोई छोटा, इस के अनुभव करने में अपने वेदान्त को लगाओ। समझो "मैं वह हूँ जो आज बड़ा है और वह जो आज बड़ा नहीं है वह भी मैं हूँ"। एक मनुष्य तुमसे बड़ा हो सकता है, उसमें तुमसे अधिक दौलत कमाने की शक्ति होसकती है, उसे तुमसे अधिक सम्मान प्राप्त हो सकते हैं। अब उन्नति करने का एक यही उपाय है कि हम देखें कि हम जिस से डाह करते हैं वह शरीर है, किन्तु वह शरीर उस नायक ( hero ) का आत्मा नहीं है, नायक का आत्मा और मैं एक हैं। यह समझो और ईर्ष्या के इस भाव से ऊपर उठो।

प्रकृतिमें जो सर्वोत्तम है उससे जितना ही अधिक तुम्हारा हृदय धुकधुकाता है, उतनाही अधिक तुम्हें यह भान होता है कि सम्पूर्ण प्रकृति भर में तुम्हीं सांस ले रहे हो।

वृक्षों की उत्पत्ति और नाश में तुम सांस लेते हो। सूर्य उदय और अस्त होता है, वही सांस अन्दर खींच और बाहिर निकाल रहा है।

जीवन और मृत्यु सांस भीतर खींचने और सांस बाहर निकालने के समान हैं। जब तक तुम प्रकृतिसे फटे हुए हो, तब तक तुम च्युत वा भ्रष्ट हो। जितना ही अधिक तुम समझते हो कि सारा जगत मेरा श्वास है और मैं वह अनन्त शक्ति हूँ जो मृत्यु की घटना द्वारा, पृथ्वी और सकल के बीच में से आने जाने के द्वारा, श्वास लेती है, (उतनाही) तुम सब तुच्छ चिन्ताओं और फिक्रों से ऊपर उठ जाते हो। यह है आन्तरिक सुन्दरता। जो लोग भीतर से सुन्दर हो जाते हैं, उनके चेहरे चाहे जैसे हों, वही प्यारे हो जाते हैं, वे समग्र संसार के आकर्षण का केन्द्र हो जाते हैं।

सुकरात ( Socrates ) बड़ा बदसूरत था और भीतरी सुन्दरता की प्रार्थना करता था। अच्छे विचार रखना भीतरी सुन्दरता है।

इससे समग्र संसार तुम्हारे लिए कितना स्निग्ध होजाता है! जब तुम समझते हो कि तुम स्वाधीन हो, तब दुनिया में कोई विषमता, कोई खुरखुरापन नहीं रहता।

यदि सूर्य नीचे आ पड़े, यदि चन्द्रमा धूल में मिला दिया जाय, यदि रीति रवाज अथवा सब दर्शन-शास्त्र (systems) तबाही में डाल दिये जाँय, तो तुमको, वास्तविक स्वरूप, सच्ची आत्मा को उससे क्या। ऐसा भान करो, क्योंकि फिर तुमको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता। सूर्य, चन्द्र, और तारागण चाहे नाश हो जाँय, पर तुम्हारा नाश नहीं होता। तुम सम्पूर्ण देश और सम्पूर्ण काल की आत्मा हो। तुम अविनाशी हो, तुम शिला की तरह स्थिर खड़े ( कूटस्थ) हो।

यह अनुभव करो। इस प्रकार से तुम्हें सांस लेना चाहिए। फेफड़ों और मन के द्वारा सांस लो। मन के द्वारा तुम सम्पूर्ण संसार के आत्मा का सांस लो, तुम अखिल विश्व का सांस लो, और इस तरह अपने को तुम प्रकृति से एकताल करो। तुम्हारा जीवन सारे विश्व से एकताल हो जाता है।

एक ताल गति क्या है? मस्तिष्क की गति एक ताल होने दो। एक ताल गति सकल मण्डलों का संगीत है। ब्रह्मांड के सब मण्डल उस एक ताल गति में श्वास ले रहे हैं।

यह एकताल गति प्राप्त करो। हर वक्त एकताल हो, हर-वक्त लोकों के संगीत से एक ताल हो, तब तुम भीतर से सुन्दर होते हो।

इस विशाल सागर में एक मछली है। समुद्र का जल मछली के गलफड़ों को भरता है, और समुद्र का पानी उसके भीतर से गुज़रता है। सारी गति उसकी है।

इसी तरह, भान करो कि सम्पूर्ण संसार मेरा है। तुम्हारी प्रफुल्लता और तबियत को कौन पस्त करता है? वह है जिसे आध्यात्मिक अस्वच्छता कहते हैं। तुम्हें अपने को स्वच्छ (पारदर्शी) बनाना है, तुम में जो अस्वच्छता (अपारदर्शिता) है उसे तुम्हें त्याग देना है, वह तुम्हें अँधियारा कर देती है।

यह अपारदर्शिता (मलिनता) क्या है? वह है यह क्षुद्र अहं, यह प्रभुताशील अहं, जो कहता है, "यह मेरा है, उस पर मेरा अधिकार है, इत्यादि"। यह अस्वच्छता (मलिनता) वह है जिसे त्याग देना चाहिए, और खुली हवा में साँस लेते समय यह भान करो कि तुम सम्पूर्ण संसार से एक हो।

तुम शुद्ध (स्वच्छ) हो जाते हो और हरेक वस्तु तुम्हारे पास आवेगी। दो मनुष्य एक राजा के सामने गये और कहा कि आप अपने महल की दीवालें रँगने और सजाने के काम पर हमें नियुक्त कीजिए। इन दो प्रतियोगी कारीगरों ने ऐसा सारा काम पाने के लिए राजा से प्रार्थना की। उन्हें नियुक्त करने से पहले राजा ने उनका काम देखना चाहा और इसके अनुसार उनसे आमने-सामने की दो दीवालें रँगने को कहा गया।

कारीगर एक दूसरे के सहारे बिना काम कर सकें, इस लिए दीवालों के सामने परदे डाल दिए गए। उन्होंने लगभग एक महीने काम किया और वह समय पूरा होने पर एक कारीगर बादशाह के पास पहुँच कर बोला कि मैं ने अपना काम पूरा कर दिया है और मैंने जो कुछ किया है उसे आप चल कर देख लें तो बड़ी कृपा होगी। तब बादशाह ने दूसरे कारीगर से पूछा कि तुम्हें पूरा करने में कितने दिन लगेंगे? उसने उत्तर दिया, "महाराज, मैं ने भी समाप्त कर दिया है"। दिन नियत कर दिया गया और राजा अपने सब मुसाहेबों (दरबारियों) तथा अन्य दर्शकों के साथ देखने पहुँचे कि कौन कारीगर दूसरे से बढ़ गया है। पहले कारीगर की दीवाल के सामने से पर्दा हटाया गया। राजा और उसके परिजन तथा सब दर्शकों ने काम को अत्युत्तम, अपूर्व बताया, वे काम से मुग्ध हो गये, उसे महान और उत्कृष्ट समझा।

दरबारियों ने राजा से कानाफूसी की कि इससे बेहतर की आशा नहीं की जासकती, दूसरे कारीगर का काम देखना अब बेकार है, क्योंकि यह रँगसाज हमारी सब आशाओं से कहीं अधिक बढ़ गया। उन्होंने समझा कि सब काम इसी कारीगर को देना उचित है। किन्तु राजा अपने दरबारियों

से अधिक बुद्धिमान था और उसने दूसरी दीवार के सामने से पर्दा हटाया जाने की आज्ञा दी, और देखिए ! लोग चकित हो गए, उनके मुँह पसर गए और हाथ उठ गए तथा आश्चर्य से नीचे की सांस नीचे और ऊपर की साँस ऊपर रुक गई। अरे आश्चर्यों का आश्चर्य, यह तो अपूर्व है।

आप जानते हैं उन्हें क्या पता लगा ? दूसरे रंगसाज ने सारे महीने भर में दीवाल पर कुछ भी नहीं चित्रित किया था। उसने दीवाल को यथासाध्य पारदर्शी (शुद्ध स्वच्छ) बनाने का यत्न किया था। उसने इस दीवार को घोटा, कलई की और सुन्दर बना दिया। दीवाल को वह पूर्णतया पारदर्शी बना देने में सफल हुआ। दीवाल देखने पर, सामने की दीवाल पर उसके प्रतियोगी ने जो कुछ चित्रित किया था वह पूरी तरह इस दीवाल में प्रतिबिंबित हुआ। इसके सिवाय यह दीवाल अधिक चिकनी थी, अधिक सम और सुन्दर थी, इसके सामने दूसरी दीवाल खुरखुरी, विषम और कुरूप जान पड़ती थी। उस दीवाल की सब रँगामेज़ी इस सुन्दर, चिकनी दीवाल में प्रतिबिंबित हुई, और फल यह हुआ कि इस दूसरी दीवाल में पहिली दीवार की सब सुन्दरता उतर आई।

उन दिनों के लोगों और राजाओं को दर्पणों की जानकारी नहीं थी, और उन्हों ने बहुत सूक्ष्मता से जाँच नहीं की, किन्तु बोल उठे, "महाराज ! यह मनुष्य दीवाल में गहरा उतरा है, उसने दो या तीन गज खोदकर हरेक बात चित्रित की है"।

मूर्तियाँ शीशे में उतनी ही दूर पर जान पड़ती थीं जितनी दूर पर वे शीशे से थीं।

अब जिस तरह इस रँगसाज ने दीवाल को यहाँ तक

बालू से मला और घोटा था कि वह दर्पण हो गई थी, उसी तरह राम तुम से कहता है कि जो लोग पुस्तकें पढ़ने में व्यग्र हैं, उन्हें बाहरी ज्ञान की प्राप्ति होती है। उन लोगों को बाहर रँगते समय दीवालों को ऐसा रँगना चाहिए कि सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया से वे सुन्दर होजाँय।

अपने मन या बुद्धि की दीवालों को मानो घिस और घोटकर पारदर्शी, चिकना, सूक्ष्म बनाने की चेष्टा ही यह प्रक्रिया है। अपने मनों को विमल बनाने से, अपने मनों को पारदर्शी बनाने से दुनिया का सब ज्ञान तुम्हारे मन में प्रतिबिंबित होगा, सम्पूर्ण विश्व से तुम प्रेरित होगे।

राम निजी अनुभव से तुम्हें बताता है कि जब हिमालय के घने जंगलों में वह रहता था, तब प्रायः ऐसा हुआ कि जब मन पारदर्शी दशा में होता था, जब वह शून्य होता था, तब अत्युत्कृष्ट विचार, अपूर्व तत्वज्ञान और अद्भुत शक्ति मानो प्रेरणा से मन में उदय होती थीं। इस लिए राम तुमसे कहता है कि "सब" पुस्तकें, इंजील, उपनिषद, वेद, मिल्टन के ग्रंथ, इमर्सन के ग्रंथ, इंगरसोल की पुस्तकें,—यद्यपि इंगरसोल इसाई नहीं कहा जाता था—प्रेरणा के द्वारा लिखी गई थीं। स्पेंसर की रचनाएँ उतनी ही प्रेरित ( inspired ) हैं जितने वेद, कुरान या इंजील। बिना प्रेरणा के कोई ज्ञान नहीं है। सम्पूर्ण ज्ञान प्रेरणा के द्वारा आता है। ग्रंथकार का यह मालिकाना, व्यापारिक, अहंकारी दावा शुरू होना ही, मेहनताना लेने की यह अर्थ-दास्यता की वृत्ति, लोगों से यह मांगना और चाहना ही, मन की दीवालों को अपूर्ण, खुरखुरा, और विषम बना देता है, यह तुच्छ रँगनेवाली, दबकने वाली वृत्ति ही ऐसा बनाती है। जब यह वृत्ति दूर होजाती है, तब मनकी दीवाल पूर्ण हो जाती है। जब तुम समग्र संसार के

साथ स्पन्दित होते हो, जब संसार का व्यापार तुम्हारा व्यापार होजाता है, जब तुम समझते हो कि तुम समग्र विश्व की नाड़ी में चलते हो, जब जान-बूझ कर या बेजाने तुम उस दशा में होते हो, तब ज्ञान आता और तुम्हें भर देता है। यह उपाय है।

पुस्तकों और मन्दिरों से अपना अन्वेषण उठाओ, रहस्य को अपने मन के भीतर ढूँढ़ो, सारा संसार भीतर खींच लो। तुम पारदर्शी (स्वच्छ, शुद्ध), हो। तुम्हारी अपार दर्शिता (मलिनता) तभी चली गई जब तुम्हारे मन में कोई प्रतियोगिता नहीं रही, अपने आप पर से दावा उठ गया, जब तुम एक शत्रु की इच्छाओं को अपनी ही इच्छाओं जैसा समझते हो, जब यह कसौटी तुम अपनी आत्मा में लागू करते हो और देखते हो कि जिन सब से मैं डाह किया करता था वे मैं ही हूँ, मैं उनकी इच्छाओं का मालिक हूँ। यदि इस शरीर का बध करने की उनकी इच्छा हो, और यदि यह इच्छा तुम्हें भी उतनी ही सुखकर हो जितनी उनको, अरे! तब तो विश्व से तुम एकस्वर हो, समग्र संसार से एकताल हो। तुम पारदर्शी हो, सब अपारदर्शिता जाती रही, तुम सर्वशक्तिमान परमेश्वर हो। यह सफलता का रहस्य है। संसार के सब ख़ज़ाने तुम्हारे हो जाते हैं।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ॐ

# आत्मानुभव के मार्ग में कुछ बाधाएं।

प्र०—क्या आत्मा, कर्म का कर्त्ता, निर्लिप्त रहता है? क्या आत्मा मनुष्यों के किसी भी कर्म का ज्ञाता होता है?

उ०—नहीं। शुद्ध स्वरूप, वास्तविक आत्मा वेदान्त के अनुसार न तो कर्म का कर्त्ता और न भोक्ता होता है। यदि वह कर्त्ता व भोक्ता होता तो निर्लिप्त नहीं रह सकता था। तुम्हारे भीतर कर्त्ता व कारक तुम्हारा मिथ्यात्मा है, असली आत्मा नहीं। और यह मिथ्यात्मा अपना अस्तित्व और अपनी समस्त शक्तियां उस वास्तविक आत्मा ही से पाता है।

यह बड़ा गहन प्रश्न है। और यदि हम इस प्रश्न के विस्तार पर दृष्टि देने लगें तो प्रायः तीन घंटे लगेंगे। इस लिए राम केवल एक दृष्टान्त देकर इसे समाप्त करेगा।

कल्पना करो, कि धोखे या भ्रम से एक कोने में तुम एक सर्प को देखते हो। तुम्हारी दृष्टि में तो सर्प दिखाई देता है, पर जब तुम उस सर्प को स्पर्श करने लगते हो, तो वह सर्प नहीं बल्कि केवल रस्सी का एक टुकड़ा रह जाता है। इस प्रकार सर्प रस्सी के अन्तर्गत स्थित भान होता है, पर वास्तव में वह होता नहीं है। देखने में तो रस्सी आधार थी, सर्प को थामे हुए थी, पर वास्तव में रस्सी ने न कभी सर्प को थामा और न आश्रय दिया। रस्सी ने सर्प को कोई स्थान नहीं दिया।

इस प्रकार अध्यास की दृष्टि से केवल रस्सी ही सर्प का सहारा तथा आधार थी, परन्तु वास्तव में रस्सी सर्प

कभी नहीं हुई, वरन् सदा रस्सी ही रही और सर्प का (उसमें) अस्तित्व ही नहीं था। इसी प्रकार बुद्धि और तार्किक पुरुष जो अभी तक भ्रम में ही है उसकी दृष्टि से यह तुम्हारा वास्तविक स्वरूप, वास्तविक आत्मा अर्थात् परमात्मा ही है जो तुम्हारे सब कर्मों को, तुम्हारे जीवन को, तुम्हारी समस्त शक्तियों और बल को थामे रखता और सहारा देता है। एक साधारण विचारवान् की दृष्टि से, या तुम्हारे अपने अनुमान अथवा सांसारिक अभ्यास की दृष्टि से आत्मा ही हर एक वस्तु को आधार तथा सहारा देता है। पर वस्तुतः और स्वयं तत्व की दृष्टि से आत्मा या शुद्ध स्वरूप कभी भी न किसी कर्म का कर्त्ता, न किसी व्यक्ति या वस्तु का आधार तथा सहारा, और न किसी का वाहक (bearer) होता है। इतना कहदेना पर्याप्त होगा कि दो भिन्न भिन्न दृष्टि-कोण (viewpoints) हैं। एक दृष्टि से तो वास्तविक आत्मा ही सब कुछ करता है, दूसरी दृष्टि से आत्मा नितान्त स्वतन्त्र है और कभी भी कुछ नहीं करता।

अब हम आत्मानुभव के मार्ग में कुछ विघ्नों का विचार करेंगे। इस विषय पर हम कई दिन से वाद विवाद कर रहे हैं और आज 'राम' तुम्हारे सन्मुख आत्मानुभव के मार्ग की एक अत्यन्त भयानक बाधा उपस्थित करेगा। यह बाधा दूसरे का छिद्रान्वेषण अर्थात् दूसरों की ऐब जोई (criticism) है। इसके दो रूप हैं आन्तरिक और बाह्य।

हम गुण-दोष-विवेचन (छिद्रान्वेषण) के बाह्य रूप को लेते हैं। किसी न किसी प्रकार से बहुत लोगोंका यह उग्र स्वभाव है कि वह दूसरों का छिद्रान्वेषण किया करते हैं, और जब तक तुम्हारे स्वभाव में दूसरों का गुणदोष-विवेचन, अथवा दूसरों में दोष निकालना, या औरों के दोष ही दोष देखना

है, तब तक ईश्वर का साक्षात करना अत्यन्त कठिन है।

एक बालक है, उसके मन में चोर नहीं है, अब यदि उस बालक के सामने कोई चोर आवे, तो वह (वे रोक टोक) हरेक वस्तु ले जा सकता है। क्योंकि बच्चे के भीतर चोर नहीं है। बच्चे के लिये बाहर भी कोई चोर नहीं है। इस प्रकार जब तुम बाहर चोर को पकड़ने का प्रयत्न करते हो, तो तुम चोर को अपने भीतर में स्थान दे देते हो।

जब तुम दूसरों में दोष या त्रुटियाँ निकालने का यत्न करते हो, तो उन दोषों को अपने प्रति तुम स्वयं बुला लेते हो। जब तुम दूसरे प्राणी को गोली मारने के लिए बन्दूक चलाते हो। तो तुमको भी बन्दूक के पलटा खाने से धक्का लगेगा। बन्दूक से तुमको भी प्रत्यघात पहुँचेगा। जब तुम दूसरों को दोष लगाते हो, तथा उनके अवगुण निकालते हो, तो उन में से कुछ अवगुण तुममें भी विद्यमान होजायेंगे, क्योंकि यही नियम है। दूसरों में दोष न निकालना दूसरों को इतना उन दोषों से नहीं बचाता कि जितना अपने को बचाता है। तुम को दोष तथा अवगुण निकालने और छिद्रान्वेषण वाले स्वभाव से ज़रूर ऊपर उठना चाहिये।

अपनी आँख में शहतीर देख पाने की अपेक्षा अपने पड़ोसी की आँखमें तिनका देख लेना कहीं अधिक सुगम है।

इस बात को सदा स्मरण रक्खो कि जब तुम ईर्षा, द्वेष, छिद्रान्वेषण तथा दोष निकालने वाले विचार, अथवा ऐसे विचार करते हो कि जिन में ईर्षा तथा द्वेष की गन्धमात्रा भी है, तो तुम स्वतः उन्हीं विचारों को अपने पास बुलाते हो। जब कभी तुम अपने भाई की आँख में तिनका देखने लगते हो, तो अपनी आंख में शहतीर पहिले डाल लेते हो।

अपने स्वयं उद्धार के लिए तुम को दूसरों को बुरा कहना

और उनमें दोष निकालना ज़रूर छोड़ देना चाहिये। इस बात को स्मरण रक्खो कि सम्भव है कि अमुक व्यक्ति के वास्ते वैसा काम लाभ दायक हो परन्तु वही तुम्हारे लिए हानिकारक हो। उस काम को जिसे तुम दूसरी व्यक्ति में बुरा बतलाते हो तुम स्वयं त्याग दो, परन्तु तुम्हें उस कार्य्य के लिए दूसरी व्यक्ति की निन्दा करने की कोई जरूरत नहीं।

क्या तुम जानते हो कि दूसरों की निन्दा करने तथा उनमें दोष निकालने का स्वभाव इतना विश्व व्यापी क्यों है? यह भी कुछ अच्छे आधार पर है।

लोग दूसरों की निन्दा क्यों किया करते हैं? और किस प्रकार के लोग सबसे बढ़कर निन्दा करते हैं? दुर्बल जन तथा अज्ञानी लोग ही हमेशा सब से अधिक निन्दा किया करते हैं। इस का कारण यह है कि इस निन्दा करने के स्वभाव द्वारा वे स्वयं अपनी रक्षा करना चाहते हैं। यह आत्म-रक्षा तथा स्थिति का विधान है जो दूसरों के छिद्रान्वेषण के रूप में प्रगट होता है।

एक व्यक्ति किसी दूसरे समाज को ऐसा काम करते देखता है कि जिसे यदि वह स्वयं करता तो उसको हानिकारक होता। इस लिए वह मनुष्य उस काम से घृणा करने लगता है। उसका उस काम से घृणा करना अनिवार्य्य है। क्योंकि यदि वह घृणा न करे तो वह उस काम के करने से रुका नहीं रह सकता और न उससे कलंकित व पीड़ित हुए बिना रह सकता है। उस काम से स्पर्श-दोष की संभावना बनी रहती है, इस लिए जिस व्यक्ति को अपने पड़ोसियों के कर्मों से स्पर्श-दोष की आशंका है, वह उनकी निन्दा करने लगता है। और इस निन्दा द्वारा वह सुरक्षित रहता है। उस का ख्याल है कि जब तक वह अपने भाई की निन्दा करता

रहेगा (वा उस में दोष देखता रहेगा), तब तक वह उससे बचा रहेगा। परन्तु इस से तो छिद्रान्वेषण का उज्ज्वल पक्ष (गुण युक्त पक्ष) ही स्पष्ट हुआ। और इस से सिद्ध होता है कि छिद्रान्वेषण हमारी आध्यात्मिक उन्नति की अवस्था विशेष में अवश्यमेव ज़रूरी है।

इस आध्यात्मिक उन्नति का दोषयुक्त पक्ष है कि वे (दुर्बल मनुष्य) यह भूल कर बैठते हैं कि व्यक्ति विशेषके निन्दनीय कामों के कारण वे उस व्यक्ति से ही घृणा करने लग जाते हैं। इन भूलों की तुम भले ही निन्दा करो और इन को दोषी ठहराओ, इन कामों को अथवा इन वाक्यों को तुम भले ही निन्दनीय तथा दोषयुक्त बतलाओ, अपने पड़ोसी के चित्त की उस खराब अवस्था की भी तुम भले ही निन्दा करो, परन्तु, तुम को उस व्यक्ति से घृणा तथा अनादर करने का कोई अधिकार नहीं है। एक पुरानी कहावत है कि "Hate sin but not the Sinner" पाप से घृणा करो किन्तु पापी से नहीं।

परन्तु क्या व्यवहार में यह सम्भव है कि पाप से घृणा की जाए और पापी से प्रेम? क्या यह वर्ताव में आ सकता है? अवश्य! यह बहुत अधिक व्यवहारमें लाया जासकता है। उन लोगों के लिये यह भले ही संभव न हो कि जिन्हों ने इस ग्रन्थी को इस प्रकार हल नहीं कर रक्खा। इसके लिए केवल थोड़े से ज्ञान की आवश्यकता है।

इस बात पर ध्यान दो, दूसरे व्यक्ति के जिस काम से तुम घृणा करते हो, वही काम यदि तुम स्वयं किये होते, तो सम्भव था कि तुम्हारे मार्ग में बाधा डालता और तुम्हारी उन्नतिको रोकता, परन्तु दूसरे व्यक्ति से किया हुआ वह उचित हो सकता है। तुम कह सकते हो कि पाप तो सदा पाप

ही है, यह भेद कहां से हो गया ?

यदि तुम अमुक कामों को पाप और अमुक २ को पुण्य कहने लगो, तो यह तुम्हारी ग़लती है। कोई भी कर्म अपने आप पाप अथवा पुण्य नहीं हो सकता, ठीक जिस प्रकार बिन्दु ( शून्य ) का स्वतः कोई मूल्य नहीं होता, परन्तु इस शून्य को जब किसी दाशमिक विन्दु (decimal point) के दाईं ओर रखदो तो इससे संख्या के मूल में हानि हो जाती है और इसी शून्यको जब दाशमिक विन्द (दशांश)की बाईं ओर रखदो तो संख्या के मूल्य में वृद्धि हो जाती है। परन्तु स्वयं शून्य (cipher or zero) का कोई मूल्य नहीं। इसी प्रकार कोई भी स्वयं पाप अथवा पुण्य नहीं है।

पाप से घृणा तथा पापी से प्रेम करने में तुम्हें कठिनाई इस कारण से होती है कि तुम पाप के रूप को ठीक नहीं समझते। जिस प्रकार लोग, जब अपने देह और धन को बहुत मानने लगते हैं, तो ईश्वर को भी साकार मानने लग जाते हैं; जिस प्रकार लोग पूजने की मूर्त्तियां और अलंकार बना लेते हैं, ठीक उसी प्रकार लोगों की अविद्या मयी प्रवृत्ति ( रुचि ) कुछ विशेष कामों को वृहत् रूप और इष्टदेव रूप बनाने में कारण बनती है, और लोग तब कुछ कामों को पाप रूप वा निकृष्ट कर्म और कुछ कामों को पुण्य रूप वा उत्तम कर्म मानने लग जाते हैं। याद रक्खो कि धर्म हृदय से सम्बन्ध रखने वाली वस्तु है, पुण्य का भी हृदय से ही सम्बन्ध है, इसी प्रकार पाप का भी। पाप और पुण्य दोनों का सम्बन्ध तो तुम्हारी मानसिक अवस्था तथा स्थिति के साथ है।

यह शरीर नहीं किन्तु जीवात्मा वा अन्तःकरण (soul) है जिस के सुधार की ज़रूरत है। यह मन है जिसका

संस्कार या द्विजीकरण किया जाना है। तुम्हारी उत्पत्ति आत्मरूप से होनी आवश्यक है। जिस प्रकार यह वाक्य कि "तू मिट्टी से बना है और मिट्टी में ही मिलेगा" जीवात्मा के संबंध में नहीं बोला गया था, ठीक उसी प्रकार यह वाक्य भी कि "तुमको पुनः आत्मा से जन्म लेना होगा, तुम्हें द्विजन्मा होना होगा," शरीर के संबन्ध में नहीं कहा गया है।

दृष्टान्त रूप से यदि तुम्हारे घर में कोई बच्चा अपनी माता के स्तनों से दूध पीता है तो क्या तुम्हारे लिए भी इस बड़ी उमर में उस माता के स्तनों से दूध पाना उचित होगा? नहीं, एक युवक और बलवान मनुष्य को घर में माताके दूध पर नहीं रहना चाहिये। वह उस पर निर्वाह भी नहीं कर सकता, परन्तु शिशु अपना निर्वाह कर लेता है। अब यहां तुम देखते हो कि बच्चे के लिए तो माता के दूध पर निर्वाह करना उचित है, परन्तु तुम्हारे लिए अनुचित। तुम्हारे लिए ऐसा करना पाप होगा। बड़ा होजाने (प्रौढ अवस्था) पर माता का दूध पीकर रहना पाप है, परन्तु शिशु के लिए कोई पाप नहीं। बच्चा वह काम करता है जो तुम्हारे लिए करना अनुचित है, परन्तु क्या तुम को इस कारण बच्चे से घृणा होती है? यदि तुम ऐसा (अर्थात् घृणा) करते हो, तो यह भी पाप है। और इसीलिये तुम पाप से घृणा करते हो, परन्तु पाप करनेवाले से नहीं।

शिशु के लिए तो यह पाप नहीं है, परन्तु तुम्हारे लिए यह पाप है। और तब तुम उससे तो घृणा करते हो जो तुम्हारे लिये पाप है, परन्तु (उसके कर्ता) बच्चे से प्रेम करते हो। तुम्हारी दृष्टि से तो वह काम दोष-युक्त अथवा पाप है, परन्तु शिशु की दृष्टि से नहीं। अतः नित्य स्मरण

रक्खो कि संसार के समस्त पापों का यही हाल है। जिन कामों वा कृत्यों को तुम्हें स्वयं करने से दोष तथा पाप होता है, उनको तुम घोर पाप समझो। संसार के ऐसे कामों से द्वेष व घृणा करो, परन्तु उन कामों के करनेवालों से घृणा तथा द्वेष मत करो। उनके सम्बन्ध में अन्यथा विचार करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं।

शेखसादी फ़ारसी के धुरन्धर और प्रसिद्ध लेखक हैं। उसकी पुस्तकों का एमर्सन ने अँग्रेज़ी भाषा में अनुवाद किया है। वह लिखता है कि जब वह बच्चा था तो मक्का (मुहम्मदसाहिब की पुण्य-भूमि) को जारहा था। यह रवाज था कि क़ाफ़ले के सब मनुष्यों से ठीक आधीरात को उठ बैठने और प्रार्थना करने (नमाज़ पढ़ने) की आज्ञा की जाती थी। एक रात सादी और उस के पिता तो उठे और नमाज़ पढ़ी, परन्तु उनके साथियों में से कुछ लोग नहीं उठे। वे सो रहे थे। सादी ने उनकी ओर लक्ष्य करके अपने पिताजी से शिकायत की "देखिये, यह लोग कितने आलसी तथा निकम्मे हैं। इन में से किसी ने भी उठ कर नमाज़ नहीं पढ़ी।" पिता ने बालक सादी को डाँट कर कहा "मेरे प्यारे बच्चे सादी। इन लोगों की निन्दा करने तथा उनमें दोष देखने की अपेक्षा तो तुम्हारे लिए यही उत्तम होता कि तुम भी उन की तरह सोते रहते और नमाज़ न पढ़ते। ईश्वर की प्रार्थना तथा आराधना न करने की अपेक्षा यह (छिद्रान्वेषण का) काम अधिक भयंकर पाप है।

यदि तुमने कोई बड़ा दानशील (पुण्यार्थ) तथा अति महान् कार्य्य किया है जिसको तुम्हारे साथियों ने नहीं किया और यदि तुम इस महान् काम से फूल जाते हो और अपने साथियों की निन्दा तथा नुकताचीनी (छिद्रान्वेषण) करते

हो, तो क्या इससे तुम्हारे पुण्य में कुछ वृद्धि होती है? क्या (इससे) तुम ईश्वर के अधिक निकट पहुंच जाते हो? नहीं, नहीं, तुमने एक प्रकार की बुराई से दूसरी प्रकार की बुराई को बदल लिया है। तुम्हारे त्यागे हुए दुष्कर्म और दुष्कृत्य उन तांबे के पैसों के समान हैं कि जिनको चान्दी के रुपयों से आप ने बदल लिया है। यहां चाँदी के रुपयों से अभिप्रायः यह नुकता चीनी (छिद्रान्वेषण) और दूसरों में दोष निकालने का स्वभाव है। इससे तो तुम वहीं के वहीं हो, तुम में केवल एक पाप (दोष) रह गया है। पहिले कदाचित तुम में एक शत दोष हों, परन्तु अब केवल एक ही दोष है, किन्तु वह एक ही दोष अन्य सौ दोषों के बराबर है। इस लिए यह (परिवर्तन) तुम्हें सच्चे त्याग के कुछ अधिक निकट नहीं लाता है।

यदि संसार इस नुक्ता चीनी (छिद्रान्वेषण) तथा निंदा करने के स्वभाव को बहुत घोर पाप नहीं समझता है तो इस में संसार का दोष है। परन्तु अनुभव से यह सिद्ध है कि यदि कोई मनुष्य कोई भूल करदे, परन्तु उस के हृदय में प्रेम हो, वह मनुष्य जिसके कर्म संसार की दृष्टि में पुण्यरूप नहीं, परन्तु जिसकी आत्मा कोमल है, जिस का मन भद्र है, जो स्वभाव ही से विनम्र है और ईश्वर के निकट है; वह मनुष्य जो दयालु है, वह मनुष्य अन्य पंडितों की अपेक्षा स्वर्गीय साम्राज्य के अधिक निकट है।

इंजील में लिखा है कि फ़ाहरिसी लोग (pharisees) बड़े धर्मज्ञ थे, उन के सब कर्म क्रिया धर्म-युक्त होते थे, परन्तु उन फलीस्तीनी लोगों (phillistines) में यह कोमल, दयालु और प्रेम युक्त भाव नहीं था। इन लोगों में यह निन्दा करने तथा दोष निकालने का स्वभाव था, जिस से ये लोग यश्च

मसीह के उतना पास नहीं पहुंच सके जितना कि मेरी मेगडेलीन, जिस पर कि पत्थर फेंके गए थे और जिसका चरित्र भी अति शुद्ध नहीं था, वह स्त्री जो निष्कलंक नहीं थी, परन्तु इस मेरी मेगडेलीन में यह निन्दा करने की, बुराई करने की, तथा दोष निकालने की प्रकृति (आदत) नहीं थी, उसके अंदर प्रेम था, और वह सत्य के अधिक निकट थी, इस कारण वह फाहरिसी लोगों से भी अधिक स्वर्गीय साम्राज्य के निकट पहुंची हुई थी।

प्रसिद्ध कवि ली हन्ट (Lee Hunt) ने अंग्रेज़ी में एक कविता* लिखी है जिसका आशय निम्न लिखित है। यह भाव बहुत ही स्पष्टता से दर्शाया गया है।

कोई एक शेख था उस ने एक बार स्वप्न में देखा कि एक स्वर्गीय दूत एक किताब में लोगों के नाम लिख रहा है। शेख ने पूछा "श्रीमान्, आप क्या कर रहे हैं", स्वर्गीय दूत ने उत्तर दिया कि "मैं उन लोगों के नाम लिख रहा हूं कि जो ईश्वर के अत्यन्त निकटवर्ती, उस के सब से अधिक प्रेमपात्र तथा उस के सबसे बड़े उपासक हैं"। इस शेख ने अपना सिर नीचा कर लिया और निरुत्साह होगया और उसने कहा कि "मैं चाहता हूं कि मैं भी और लोगों की भाँति ईश्वर का उपासक होता; परन्तु मैं कभी प्रार्थना नहीं करता (नमाज़ नहीं पढ़ता), मैं कभी व्रत (रोज़ा) नहीं रखता, मैं मन्दिर (मसजिद) में भी कभी नहीं जाता, मैं पतित होवूंगा। मैं स्वर्ग के साम्राज्य में नहीं जा पाऊंगा"। स्वर्गीय दूत ने कहा कि "इसका कोई उपाय नहीं"। इस पर शेख ने एक और प्रश्न पूछते हुए कहा "कि क्या तुम कभी ऐसे लोगों की भी सूची तैय्यार करोगे कि जो मनुष्य मात्र तथा समस्त विश्व

* कविता का नाम है Abou Ben Adham and the Angel.

से तो प्रेम करते हैं,परन्तु ईश्वर से प्रेम नहीं करते"। उस ने फिर कहा "कि मेरा नाम मनुष्य का उपासक लिख लो"। स्वर्गीय दूत अंतर्धान होगया। शेख़ को फिर स्वप्न हुआ। इस दूसरी बार के स्वप्न में वही स्वर्गीय दूत फिर वही किताब लिये हुए प्रगट हुआ। और जब वह उस पुस्तक के पृष्ठ उलट पुलट रहा था, तो शेख़ ने पूछा कि "अब क्या कर रहे हो"। स्वर्गीय दूत ने उत्तर दिया कि "मैं ने पुस्तक का पुनर्वलोकन कर लिया है और ईश्वर के उपासकों का नाम क्रम से उन की भक्ति के अनुसार लिख लिया है"। शेख़ ने उस पुस्तक को एक निगाह देखने की प्रार्थना की, और वह आश्चर्य्य-युक्त हुआ, क्या देखता है कि जिस शेख़ ने अपने को मनुष्य का उपासक बतलाया था उसका नाम ईश्वर भक्तों तथा उसके उपासकों की श्रेणी में सब से प्रथम है!

क्या यह आश्चर्य्यमय नहीं है? यह एक तथ्य (fact) है।

यदि तुम मनुष्य की उपासना करो अर्थात दूसरे शब्दों में यदि तुम मनुष्य को मनुष्य नहीं बल्कि ईश्वर समझो, यदि तुम प्रत्येक वस्तु को ईश्वर,परमात्मा समझो और फिर मनुष्य की उपासना करो, तब आप ईश्वर की ही उपासना करते हो।

यह छिद्रान्वेषण, निन्दा,बुराई करना और दोष निकालना ईश्वर की उपासना नहीं है। कुछ अर्पण कर देने ही से ईश्वर की उपासना नहीं होती। इञ्जील में लिखा है कि जिस समय लोगों ने यशु मसीह से कहा "कि आपके माता पिता बाहर खड़े हुए आप की राह देख रहे हैं", तो यशु ने जन समूह को दिखला कर कहा कि "यह देखो मेरे माता और पिता, उन के मुख को आप अपने मुख के ही समान देखो"।

तुम अपने अवगुणों को स्वयं देखते हो और फिर अपने

आप से घृणा नहीं करते, और यदि तुमको अपने मित्र में कुछ दोष मालूम हों तो उन दोषों से स्वयं अलग रहने का प्रयत्न करो, और उन से बचे रहो, परन्तु मित्रों से घृणा मत करो। वे ईश्वर हैं। उन में ईश्वरत्व का अनुभव करो।

यहां पर एक मनुष्य है जो अमरीका राज्य की नौकरी में है। जो राज्यका कुछ सरकारी काम करता है। इसको यह धुन सवार होती है कि सारा सरकारी काम छोड़ कर वह राष्ट्रपति (President U. S. A. के पास जाता है और अपना सारा समय उसके प्रति लगाता है। अपना कर्तव्य भूल जाता है। तो क्या ऐसे व्यक्ति की नौकरी बनी रहेगी? नहीं! कदापि नहीं! उसको निकाल दिया जाएगा।

राष्ट्रपति की पूजा (सेवा) के लिए तुम को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये था। तुमको, मानो, उन कामों तथा कार्यों की उपासना करना चाहिये थी जो राष्ट्र के सेवक होने के नाते से तुम्हारे ज़िम्मे हैं। इसी प्रकार यदि तुम्हारा यही लक्ष्य हो कि तुम मन्दिरों तथा देवालयों में ही धर्म को स्वीकार करो, तो यह राष्ट्रपति के पास जाने और उसके पैर दबाने तथा उसको दंडवत् प्रणाम करने के तुल्य है। परन्तु इससे काम नहीं चलेगा।

ईश्वरोपासना का सर्वोत्कृष्ट उपाय अपने मित्र में ईश्वर परमात्मा का पूजना है। जब तुम (इस उपाय से) उस दशा को पहुंच गये कि जहां तुम्हें अपने मित्र में ईश्वर अनुभव होने लगता है, जहां अपने मित्रों के दोष तथा अवगुण तुम्हें कष्ट नहीं करते, जहां मित्रों की ग़लतियां और भूलें उनकी ईश्वरता से तुम्हें विमुख नहीं करतीं, जब वह परमात्मा स्वरुप किसी रीति से तमोवृत (अस्पष्ट) तुम से नहीं होता, तब तुम अपने में ब्रह्मसाक्षात्कार करने के योग्य होगे।

बीजरूप से सारी कठिनाई यहां यह है, अपने शत्रु में हमें क्यों ईश्वर भान नहीं होता? इस लिये कि हम अपने शत्रु में दोष देखते हैं। लोगों को दूसरों मे दोष देखने से अवश्य बंद होना चाहिये और अपने चारों ओर ईश्वर भान करना चाहिये। प्रत्येक शरीर में मौजूद ईश्वर पर विश्वास करो और उस अनन्त स्वरूप को प्रत्येक, पदार्थ में देखो। बहुधा हम नीरो (Nero) सरीखे मनुष्य देखते हैं जो अपनी युवा अवस्था में तो अत्यन्त धर्मात्मा और बड़े सच्चरित्र थे परन्तु बाद में महा दुष्ट निकले। इङ्गलेण्ड का बादशाह हेनरी पञ्चम (Heury V.) अपनी बाल्यअवस्था में बड़ा दुष्ट था, परन्तु बाद में वह बहुत ही सज्जन हो गया। इस लिए किसी भी व्यक्ति के चरित्र को स्थिर (अपरिवर्तनीय, Stereotype) करने का प्रयत्न मत करो, क्योंकि सम्भव है कि कई मनुष्य जो आज बुरे हैं कल बड़े अच्छे होजाएं। सर वाल्टर स्काट* (Sir Walter Scott) जब बालक था तो बुद्धू था, परन्तु बाद में वह बड़ा आदमी बन गया था। सर आईज़क न्यूटन† (Sir Isaac Newton) पर हिसाब के सवाल ठीक न निकालने पर कई बार मार पड़ी थी, परन्तु देखो, बाद में वह क्या हो गया।

मेरी मेगडेलीन (Mary Magdalene) अपने आरंभ यौवन

---

* विलायत का एक धुरंधर कवि व उपन्यास लेखक, Ivanhoe, Quentin Durward, Talisman, Lay of the last Minstrel उसकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं।

† विलायत का एक वैज्ञानिक, इसने साइन्स में बहुत से अविष्कार किए हैं। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति की ओर पाश्चात्य विद्वानों में से सब से-पहिले इसी का ध्यान गया था। Theory of Gravitation इसी का अविष्कार है।

काल (अपनी चढ़ती जवानी) में बड़ी दुश्चरित्रा थी, परन्तु बाद में जब उसका हज़रत ईसा मसीह से मिलाप हुआ तो वह एक अत्यन्त पवित्र स्त्री होगई। वह ईसा मसीह की शिष्या बन गई। आज का साधारण पापी सम्भव है कि थोड़े काल के बाद साधु बन जाए, सर्वोपरि पवित्रात्मा हो जाए। स्मरण रक्खो कि यदि कोई मनुष्य ग़लती कर रहा है, तो तुमको उससे विरोध करने का तथा उससे घृणा करने का कोई अधिकार नहीं। उसके भीतर ईश्वर को देखो, ईश्वर को प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तु के भीतर देखो। यदि कोई मनुष्य तुम्हारे विषय बुरे विचार कर रहा है, यदि और लोग तुम में दोष निकालते हैं, तो क्या तुमको इसका बदला लेना चाहिए? नहीं, नहीं, कदापि नहीं।

जब सुक़रात जेल (कारागार) में था और उसको ज़हर दिये जाने से पहिले उसके शिष्य उसके गिर्द इकट्ठे हुए और उन्हों ने चाहा कि वह (सुक़रात) कारागार को छोड़ कर निकल भागे; उनकी इच्छा थी कि वे जेलर (jailor, कारागार अध्यक्ष) को रिश्वत देकर उसको भगा दें। सुक़रात ने उन से पूछा "कि क्या रिश्वत देना और राज्य के नियम भङ्ग करना न्याय सङ्गत है?" उन्हों ने उत्तर दिया "कदापि नहीं।" तब उसने पूछा "कि यदि यह न्याय सङ्गत नहीं है तो मुझ से निकल भागने को क्यों कहते हो, मुझको अन्याय युक्त काम करने को क्यों कहते हो?" उन्हों ने उत्तर कि "इन लोगोंने स्वयं अनुचित किया है और इन्हों ने क़ानून का उचित प्रकार से प्रयोग नहीं किया है। और इस कारण से तुम्हारा निकल भागना अनुचित न होगा"। इस पर सुक़रात ने कहा "क्या तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं बदला लूं; क़ानून का उल्लंघन करूं। क़ानून के विरुद्ध कार्य्य करूं,

क्योंकि और लोग नियम भङ्ग करते हैं ? यदि मैं क़ानून का उल्लंघन करूं, तो इससे ग़ल्ती का संशोधन किसी प्रकार सम्भव नहीं, यह तुम्हारे उस बयान के साथ मेल नहीं खाता कि जो बयान तुमने न्यायाधीश के सामने दिया है कि "नियम भङ्ग कभी न्याय सङ्गत नहीं"। Two blacks never make a white, दो काले मिलकर श्वेत नहीं बना देते। यदि और लोग नुक़्ता चीनी करते हैं और दोष निकालते हैं, तो हमको क्यों ऐसा करना चाहिये। यदि हम भी वैसाही करें जैसा और लोग करते हैं, तो इससे हम केवल पूर्व दोष को वृद्धि ही देते हैं और इस रीति से बात कभी भी ठीक होने नहीं पाती।

नुक़्ता चीनी तथा बुरे विचारों द्वारा तुम को किस प्रकार हानि होती है ? जब तुम उनको लेते (ग्रहण करते) हो, तब ही वे तुम्हें हानि पहुंचाते हैं। यदि तुम उनको ग्रहण न करो, तो तुम को हानि नहीं होगी। ठीक जिस प्रकार एक व्यक्ति तुम्हारे पास पत्र भेजता है और तुम उसको ले लेते हो। तुम्हारे ऊपर इसका अच्छा अथवा बुरा प्रभाव पड़ेगा। परन्तु यदि तुम पत्र को नहीं खोलो, उसको लो ही नहीं, अथवा यदि इसे डाकखाने में ही वापिस छोड़ दिया जाये, तो यह भेजने वाले के पास उलटा भेज दिया जाता है। इसी प्रकार यदि और लोग बुरे विचार भेजते हैं और तुम उनको नहीं लेते, तो वह बुरे विचार लौट जाते हैं; परन्तु इन विचारों के को लेने तथा स्वीकार कर लेने से तुम मामले को उलट पलट कर देते हो; अर्थात् अर्थ का अनर्थ कर देते हो। उनकी नुक़्ता चीनी (छिद्रान्वेषण) तुम मत लो। किस प्रकार से ? अपनी ब्रह्म भावना पर डटे रहने से, अपने केन्द्र पर जमे रहने से, अपने आत्मा में निवास रखने से और तत्व को

अनुभव करने से।

निम्न लिखित कविता उस समय लिखी गई थी जब मन मन नहीं था, अर्थात् चितवृत्ति लुप्त थी। इस कविता का सार (भावार्थ) ईश्वर के अस्तित्व का बोध कराना है, ईश्वर को तुम्हारे निकट लाना है; जब कि ये छिद्रान्वेषण की दीवारें, ये पर्दे, ये आवर्ण तुम्हारे शरीर में बाक़ी न रहें, दूसरों में निकल जायं और तब तुम्हें ईश्वर का बोध (ज्ञान) हो। "So close, so close, my darling close to me" मेरा प्यारा! मेरे इतने निकट है अर्थात् अत्यन्त निकट है, अत्यन्त निकट है, अत्यन्त निकट है। यहां Darling (अत्यन्त प्रिय) शब्द का अर्थ परमात्मा, अनन्त स्वरूप है।

यह वही है जो बालों को बढ़ाता है। यह वही है जो नाड़ियों में रक्त का सञ्चार करता है। यह वही है जो तुम को देखने तथा बोलने की शक्ति देता है। तुम्हारी वाणी में ईश्वर है, तुम्हारे अवलोकन में परमात्मा है, तुम्हारे श्रवण कर्म में भी वही परमात्मा विद्यमान है। और वह शुद्ध स्वरूप, वह परमात्म देव जिससे तुम पूर्ण व्याप्त हो, वही यह परमात्मा है जो तुम्हारे मित्र, तुम्हारे भाई, तुम्हारे सम्बन्धी, तथा तुम्हारे दुश्मन में है। जब तुम्हें परमात्मा भान (अनुभव) होता है, तो कोई दुशमन नहीं रहता। जब तुम अपनी आँखें उस परमात्मा से बंद कर लेते या फेर लेते हो, तब दुश्मन प्रकट होतेहैं। जिस आनन्द को तुम खोजते हो उसे भीतर भान करो, अनुभव करो; वह परमानन्द स्वरूप परमात्मा तुम्हारे अत्यन्त निकट है।

आनन्द मनाओ, आनन्द मनाओ। तुम्हारी इच्छाओं के पदार्थ, जाने अथवा अनजाने, अपना लक्ष्य ईश्वर ही रखते हैं। क्या समस्त इच्छाओं का लक्ष्य आनन्द नहीं है। और

आनन्द स्वयं ईश्वर नहीं है ? अरे, अनुभव करो।

"So close, so close, my darling, close to me!
Above, below, behind, before, you be.
Around me, without me, within me, 'O me';
How deeply, immensely and intensely you be.

ऐ मेरे प्रियतम ! तुम मेरे निकट, मेरे समीप, मेरे नज़दीक इतने हो जाओ कि ऊपर, नीचे, आगे पीछे तुम ही तुम रह जाओ। और इतने अत्यन्त अगाध, अपरिमाण और प्रचण्ड हो जाओ कि मेरे चारों ओर मेरे भीतर बाहिर बल्कि मैं खुद तुम ही तुम हो जाओ।

सब बन्धन छिन्न भिन्न हो गए, सब तार टूट गए 'मैं' 'और' 'तू' के ख्याल सब पीछे रह गए, सारे सांसारिक सम्बन्ध पीछे छोड़ दिये गये।

ईश्वरत्व व सत्यता इतनी सुस्पष्ट; आत्मानुभव इस दर्जे का कि सारे स्वार्थी सम्बन्ध भंग। यह आत्म-साक्षात्कार था। जब तक यह बन्धन तुम्हारे लिए खूब स्पष्ट वा प्रत्यक्ष रूप से प्रगट हैं,तबतक यह आत्मानुभव नहीं है। यही दैवी विधान है। यशु मसीह के इन शब्दों में अद्भुत सत्य है "जो कुछ तेरे पास है वह तू समस्त बेच दे, दीनों को दे दे और मेरा अनुसरण करे", परन्तु लोग भय खाते हैं।

आधुनिक (नूतन) सभ्यता ! तुझे ईसा मसीह के कथन और कृतियों में सत्य को मानना तथा अनुभव करना परमावश्यक है। यहाँ वेदाँत तुमको डंके की चोट से कह रहा है कि तुम ईश्वर तथा शैतान दोनों की सेवा एक साथ नहीं कर सकते। आत्मानुभव की घड़ियें वह होती हैं कि जब समस्त सांसारिक संबन्ध, समग्र सांसारिक नाते, सम्पूर्ण सांसारिक सम्पत्ति, साँसारिक इच्छा तथा आवश्यकताओं

के संकल्प सब ईश्वर में, सत्य स्वरूप में सम्पूर्ण लय हुए होते हैं।

My baby, lover, father, sister, brother,
My husband, wife, my friend or foe; my mother;
O sweet my self, my breath, my day, my night,
My joy, my wrong, my right.
Gay garments of love, thou changest aright,
How charming are the colours at day break put on.

O Truth, O Divinity, O God, I have nothing else.
I have no ties and my relation is only with thee.
I never waver. If I am careless, it is but teasing, teasing my loved one, for I have to tease only Thee.

ऐ मेरे शिशु, प्रेमी, पिता, भगनि, भाई स्वरूप !
ऐ मेरे पति, पत्नी, मित्र, शत्रु, मेरी माता स्वरूप !
ऐ मेरे मधुर (प्रिय) अपना आप (आत्मा), मेरे प्राण, मेरा दिन, मेरी रात स्वरूप !
ऐ मेरे आनन्द ! मेरी भूल, मेरी यथार्थता रूप !
प्रेम के सुन्दर वस्त्र, तू यथास्थान (देश कालानुसार ठीक ठीक) बदलता रहता है।
प्रातकाल के समय कैसे मनोहर रंग तू ओढ़ लेता है।
ओ सत्य ! ओ परमात्मन् ! ओ ईश्वर, मेरे पास तेरे सिवा कुछ नहीं है।
मुझे कोई बन्धन नहीं और मेरा सम्बन्ध केवल तुझ से है।

मैं कभी भ्रान्त नहीं होता। यदि मैं बे परवाह होता हूँ, तो यह केवल अपने प्यारे को परेशान करने के लिये, अपने प्रियतम को दिक़ करने के लिए है, क्योंकि मुझे तो केवल तुम को ही दिक़ करना है।

"ओ घर, प्यारे घर? मेरी खाट! मेरा सहारा स्वरूप"! कृपया अपनी आत्मा (अन्तःकरण) में यह विचार भर लो कि परमात्मा ही तुम्हारी खटिया है जिस पर तुम शयन करते हो।

ऐसा भान करो कि तुम ईश्वर ही पर सोते हो।

"ज़रा ठहरो, मैं देखता हूँ कि मैं ने क्या खरीद लिया, ओ आश्चर्य! मैं सर्व शक्तिमान हूं, मैं भूल गया था"; जो वस्तु मैं ने खरीदी या मोल ली है वह मैं हूँ, मैं स्वयं; तुमने जो मोल लिया है, वह ही तुम सदा से हो।

" The dazzling glory, my chariot of sun,

Quintessence of God head, restorer of sight.",

"चकाचौंध करने वाली शान, मेरे प्रकाश स्वरूप का रथ ईश्वरत्व का सार दृष्टि (ज्योति) का पुनः देनेवाला है"।

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

# कमीशन दर

पकट्ठा खरीदने वाले ग्राहकों व एजंटों के लाभ के लिये लीग ने अपने गत अधिवेशन में निम्न लिखित दर कमीशन की पास की है जिस से रामोपदेशों का प्रचार दिन बदिन उन्नति पकड़ता रहे।

(१) २०) रु० से कम के खरीदार को कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

(२) २०) रु० से ३०) रु० तक के खरीदार को १०) रु० सैंकड़ा।

(३) ३०) रु० से ५०) रु० तक के खरीदार को १५) रु० सैंकड़ा।

(४) ५०) रु० से २००) रु० तक के खरीदार को २०) रु० सैंकड़ा।

(५) २००) रु० से ऊपर के खरीदार को २५) रु० सैंकड़ा कमीशन दिया जायगा।

मंत्री